प्रकाशक :
जैन इतिहास समिति,
आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार,
लाल भवन, चौडा रास्ता, जयपुर-३

●

प्रथम संस्करण · १९७१

मूल्य : छह रुपये

●

मुद्रक :
राज प्रिंटिंग वर्क्स,
किशनपोल बाजार, जयपुर-१

प्रकाशकीय

'पट्टावली प्रबन्ध सग्रह' के बाद 'जैन आचार्य चरितावली' के रूप मे जैन इतिहास समिति का यह दूसरा प्रकाशन पाठको के समक्ष प्रस्तुत है।

'पट्टावली प्रबन्ध सग्रह' मे जहाँ लोकागच्छ और स्थानकवासी परम्परा से सम्बन्धित १७ पट्टावलियाँ मूल रूप मे सकलित की गई थी, वहाँ इस कृति मे भगवान् महावीर से लेकर आज तक के प्रमुख जैनाचार्यों की परम्परा और उनकी चरितावली को पद्यबद्ध किया गया है।

इस काव्यकृति के रचनाकार है श्रद्धेय आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज। आचार्य श्री विगत कई वर्षों से जैन परम्परा के प्रामाणिक इतिहास-लेखन मे मनोयोग पूर्वक लगे हुए है। उसका प्रथम भाग (भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर तक) अब मुद्रित हो रहा है।

इतिहास का विषय गहन और व्यापक होने के साथ-साथ शुष्क और नीरस भी है। उसमें सभी समान रुचि से रस नही ले पाते। परिणाम यह होता है कि सामान्य जन अपनी परम्परा, सस्कृति और धर्माचार्यो सम्बन्धी आवश्यक जानकारी से भी वचित रह जाते है। इस कमी को पूरा करने के लिये आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज ने अपने साधनानिष्ठ व्यस्त जीवन मे से कुछ समय निकाल कर जैन परम्परा के इतिहास को राग-रागिनियो मे बाध कर, उसे सरस बनाकर सरल भाषा मे प्रस्तुत किया है जिसे कठस्थ कर सगीतप्रिय सामान्य व्यक्ति भी उसका आनन्द ले सकता है। इस उपकार के लिए समाज सदैव उनका ऋणी रहेगा।

विषय और भाव को अधिकाधिक स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक छन्द का अर्थ भी साथ-साथ दे दिया गया है।

इस कृति के इस रूप मे पाठको के सम्मुख आने की भी एक कहानी है। पाँच-सात वर्ष पूर्व अपने प्रवचन मे आचार्य श्री ने इस चरितावली का मूल रूप मे वाचन किया। श्रोता इसमे बडे प्रभावित हुए। जोधपुर, पाली, ब्यावर, नागौर आदि नगरो के जिज्ञासु श्रावको ने इसको अधिकाधिक सुनने की उत्कंठा प्रकट की। बहुतो ने इसके विस्तृत नोट भी लिये। पर मूल पाठ के कवितामय होने से पूरे भाव स्पष्ट नही होते थे। इस पर इसके विषय और भाव को अधिकाधिक स्पष्ट करने के

लिये प्रत्येक छन्द का अर्थ भी साथ-साथ सुनाने की आचार्य श्री ने कृपा की। इसे लेखवद्ध भी किया गया जिसका सर्वांगीण रूप इस प्रकाशन के रूप मे पाठको के सम्मुख प्रस्तुत है।

इतिहास-प्रेमी भी इस ग्रन्थ का लाभ उठा सके, इस दृष्टि से अन्त के परिशिष्टो मे लोंकागच्छ की परम्परा और धर्मोद्धारक श्री जीवराजजी महाराज, श्री धर्मसिंहजी महाराज, श्री लवजी ऋषि, श्री हरजी ऋषि, श्री धर्मदासजी महाराज आदि से सम्बन्वित विभिन्न शाखाओ का विवरण भी दे दिया गया है।

विद्वानो और शोधार्थियो की सुविधा के लिए अनुक्रमणिका भी दे दी गई है। इससे इस कृति मे आये हुए किन्ही भी आचार्य, मुनि, राजा, श्रावक, ग्राम, नगर, प्रान्त, गण, गच्छ, शाखा, वंश, सूत्र, ग्रन्थ आदि के सम्बन्ध मे सुगमता व शीघ्रता से तत्काल ज्ञातव्य प्राप्त किया जा सकता है। अन्त मे शुद्धिपत्र भी जोड दिया गया है। पाठको से निवेदन है कि वे अशुद्धियो को सुधार कर पढे।

इस ग्रन्थ के लेखन मे धर्म सागरीय तपागच्छ पट्टावली, हस्तलिखित स्थानकवासी पट्टावली, प्रभु वीर पट्टावली और पट्टावली समुच्चय आदि ग्रन्थो का सहारा लिया गया है। प्राचीन हस्तलिखित पत्रो का एव आचार्य श्री ने स्वयं अपनी धारणा का भी इसमे उपयोग किया है। उन समस्त ग्रन्थकारो एवं ग्रन्थो को उपलब्ध कराने वाले सज्जनो एवं ज्ञान-भंडारो के प्रति हम हृदय से कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

इसके सम्पादन मे हमे श्री गजसिंहजी राठोड, जैन न्यायतीर्थ का और अनुक्रमणिका तैयार करने मे श्रीमती शान्ता भानावत, एम० ए० का अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, तदर्थ हम उनके आभारी हैं। इसी तरह ज्ञात-अज्ञात जिन महानुभावो का सहयोग हमे इसमे मिला है, उन सभी के प्रति हम कृतज्ञ हैं।

आशा है, यह ऐतिहासिक काव्यकृति पाठको को न केवल जैन परम्परा का ज्ञान करायेगी, वरन् उन्हे इतिहास के प्रति अधिक सजग और अनुरक्त भी बनायेगी।

पूर्ण सावधानी रखते हुए भी ग्रन्थ के लेखन मे अथवा मुद्रण मे कही कोई ऐतिहासिक त्रुटि या स्खलना रह गई हो या कही कुछ किसी को अप्रिय लेख आ गया हो तो सत्य के अन्वेषक पाठक उसके लिये हमे क्षमा करते हुए हँस की नीर-क्षीर विवेक दृष्टि से काम लेगे एव आवश्यक सशोधन एवं त्रुटि के बारे मे हमे सूचित करने की कृपा करेगे ताकि अगली आवृत्ति मे हम उनका उचित निराकरण कर सके।

—सोहनमल कोठारी
मत्री
जैन इतिहास समिति, जयपुर।

लाल भवन, जयपुर
१-१-१९७१

सम्पादकीय

सत सत्पथ के केवल पथिक ही नही, अपितु ससार को सत्पथ प्रदर्शित करने वाले प्रकाश-स्तम्भ और भव-सागर के तैराक होने के साथ-साथ तारक भी होते हैं। युग-युगान्तरो से मानव समाज सत समाज का ऋणी रहता आया है, आज भी है और आने वाले कल से लेकर अनन्त काल के पश्चात आने वाले कल्पनातीत अनागत तक वह सदा-सर्वदा निष्कारण करुणाकर, करुणावतार संतो का ऋणी रहेगा। क्योकि असख्य अभिशापो से ओतप्रोत इस ससार मे केवल एक संत समाज ही वास्तव मे वरदान स्वरूप है।

सतो के अमृतमय अनमोल अमर बोल वसुन्धरा के कण-कण को गु जाते हुए, अनन्त आकाश को प्रतिध्वनित करते हुए सतप्त मानव-मन को आत्मानुभूति के अथाह आनन्द-सागर को सुखद हिलोरो के झूलो पर झुला कर अनिर्वचनीय शान्ति प्रदान करते हैं, यथा

सुवण्ण रूवस्स हु पव्वया भवे, सिया हु कैलाससमा अणतया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि, इच्छा हु आगाससमा अणतया॥

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दयो।
अप्पादंतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य॥
श्रूयतां धर्मसर्वस्व, श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मन प्रतिकूलानि, परेषा न समाचरेत्॥

क्रोध, लोभ मद, मोह, ईर्ष्या और द्वेष से जलती हुई जाज्वल्यमान जगत की भट्टी मे दग्ध होते हुए मानव समाज के कर्णरन्ध्रो मे यदि संतो के उपर्युक्त वचनामृत नही पहुँचते तो आज मानव समाज की कितनी भीषण, दारुण एव दयनीय स्थिति होती, इसकी हम कल्पना भी नही कर सकते।

ऐसी स्थिति मे यह निर्विवाद सत्य है कि सन्त मानव-समाज के सच्चे शुभ-चिंतक, सुहृद, परम उपकारी, पथ प्रदर्शक और कर्णधार हैं। इनके पद-चिन्ह और पतित पावन जीवन चरित दिग्भ्रान्त मानव के लिए प्रेरणा स्रोत और ध्रुव तारे की तरह दिशासूचक ज्योतिपुञ्ज प्रदीप है।

प्रस्तुत पुस्तक मे आज के युग के एक महान सन्त पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब द्वारा आचार्यो के पावन चरित बडे भाव भरे पद्यो मे अत्यन्त मनोहारी लोक-शैली के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं।

आचार्य श्री ने भगवान् महावीर के प्रथम पट्टधर आर्य सुधर्मा स्वामी से प्रारम्भ कर आज तक के युग प्रवर्तक आचार्यो के अथाह चरित्रो का इस छोटी सी पुस्तक मे संक्षिप्त–सजीव चित्रण कर वास्तव मे सागर को गागर मे भर देने की असाध्य कहावत को चरितार्थ कर दिया है।

पूज्य श्री की वाणी व लेखनी से प्रकट हुआ प्रत्येक शब्द, प्रत्येक भाव वस्तुतः अमर सतवाणी है, जिसके सम्पादन की कोई आवश्यकता नही रहती अत. इस सम्पादन कार्य को मै अपने लिये पूज्य श्री की असीम कृपा का प्रसाद ही समझता हूँ।

गुड़ के प्रथम रसास्वादन के आनन्द की अभिव्यंजना करने मे असमर्थ गूँगे व्यक्ति द्वारा अपने प्रियजनो के समक्ष गुड प्रस्तुत करते समय जो उसकी स्थिति होती है, ठीक वही स्थिति मेरी भी अपने इस प्रथम सम्पादित कृति को पाठको के समक्ष प्रस्तुत करने मे हो रही है।

भक्तिपरक होने के कारण इस पुस्तक का बहुत बड़ा आध्यात्मिक महत्त्व तो है ही परन्तु ढाई हजार वर्ष की आचार्य परम्परा के शृंखलाबद्ध संक्षिप्त इतिहास का आचार्य श्री ने बडी कुशलता के साथ इसमे आलेख किया है, अत. इस काव्य का ऐतिहासिक दृष्टि से भी बडा महत्व है। मैंने इस पुस्तक का अनेक बार लय के साथ पाठ किया है और मेरी यह निश्चित धारणा है कि यह काव्य स्वल्प समय मे ही जन-जन का कण्ठाभरण बन जायगा।

अन्त मे यह निवेदन करना चाहूँगा कि यह पुस्तक मुझे जितनी अधिक प्रिय है उतना अधिक समय, एक अन्य कार्य मे अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण, इसकी शुद्ध छपाई आदि की ओर मैं विशेष ध्यान नही दे सका हूँ अत. इसके सम्पादन मे रही त्रुटियो के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

—गजसिंह राठोड़

अनुक्रम

●

जैन–आचार्य चरितावली

॥ राधे० ॥

शासनपति को वंदन करके, गुरु को शीश झुकाता हूं।
ज्योतिर्धर आचार्य प्रवर की, गुणगाथा मैं गाता हूं ॥१॥

अर्थ —सर्व प्रथम मगलनिधान शासनपति भगवान् महावीर को वदन कर, श्री ज्ञानदाता गुरुदेव को नमस्कार करता हू। फिर वीरशासन के ज्योतिर्धर आचार्य प्रवर का संक्षिप्त गुणगान करता हू ॥१॥

॥ लावणी ॥

यह जिन शासन की महिमा जग में भारी,
लेकर शरण तिरे अनन्त नर नारी ॥ टेर ॥
चतुर्थ काल में अन्त वीर शिव पाये,
अर्द्ध भरत में आंतर तम तब छाये।
ज्योतिर्धरों ने धर्म प्रदीप जलाया,
भवजीवों को सत्यमार्ग वतलाया ॥
कृतज्ञ मन से जायें हम बलिहारी ॥ लेकर० ॥ १ ॥

अर्थ—चतुर्थ काल के अंत मे जव भगवान् महावीर मोक्ष पधारे, तव दक्षिणार्द्ध भरत मे अज्ञान का अंधकार छा गया। उस समय सुधर्मा आदि ज्योतिर्धर आचार्यो ने धर्म का प्रदीप जला कर भव्य जीवो को सत्य का मार्ग वतलाया। हम सव कृतज्ञ भाव से वार-वार उनकी वलिहारी जाते है। उनका यह महान् उपकार अविस्मरणीय है ॥१॥

॥ लावणी ॥

युग प्रधान सन्तों की जीवनगाथा,

उनके अनुगामी को न्हायें (नमावें) माथा।
राग-अंध हो भूला जन निज गुण को,
धर्म-कथा जागृत करती जन-मन को।
सुनो ध्यान से सत्य कथा हितकारी ॥ लेकर० ॥२॥

अर्थ —महावीर के अनुगामी आचार्यो को सिर नमा कर उन युग प्रधान संतो की हम प्रेम से जीवनगाथा गाते है। रागान्ध मानव निज-गुण को भूल रहा है। धर्म-कथा ही मानव के उस सोये हुए मन को जागृत करती है। वैसी स्वपरहितकारी कथा ही कल्याणार्थी को ध्यान से श्रवण करनी चाहिये ॥२॥

॥ राधे० ॥

प्रथम पट्टधर हुए सुधर्मा, जिनका यश जग छाया है।
बीस वर्ष शासन दीपा कर, शुद्ध बुद्ध कहलाया है ॥ २ ॥
छात्र पांच सौ साथ प्रव्रज्या, लेकर धर्म दिपाया है।
शास्त्रवाचना के संचालक, जग उपकार सवाया है ॥ ३ ॥
श्रमणसंघ के थे युग नेता, भिन्न कल्प भी चलते थे।
पर सब मे थी एक सूत्रता, संयम जीवन जीते थे ॥ ४ ॥
तरुण विरागी एक मिला, लक्ष्मी का परम दुलारा था।
ऋषभदत्त का कुलउजियारा, आठ रमणीका प्यारा था ॥५॥

अर्थ —आर्य सुधर्मा महावीर के प्रथम पट्टधर हुए जिनका विमल यश समस्त संसार मे फैला हुआ है। तीस वर्ष तक सामान्य मुनि-पद पर रह कर आप आचार्य पद पर आसीन हुए, और बीस वर्ष तक शासन की प्रभावना कर सिद्ध मुक्त हो गये। आपने पाच सौ छात्रो के साथ प्रव्रज्या ग्रहण कर चौदह पूर्व का ज्ञान प्राप्त किया। आज की शास्त्र-वाचना के आप ही सचालक है। आप श्रमणसघ के प्रथम युग प्रधान आचार्य थे, आपके समय मे जिन कल्प और स्थविरकल्प जैसे भिन्न-भिन्न कल्प भी चलते थे, फिर भी कही किसी मे विरोध का व्यवहार दृष्टि-गोचर नही होता। कुछ स्वकल्याण मे रत रहते थे तो दूसरे स्वकल्याण के साथ समाजहित मे भी यथायोग्य योगदान दे रहे थे। सबमें एकसूत्रता थी। संयम जीवन से जीना सबको इष्ट था। एक समय उनको राजगृह मे एक तरुण लक्ष्मीपुत्र

विरक्त रूप मे मिला, जो श्रेष्ठीवर ऋषभदत्त का दुलारा और आठ कुल रमणियो का प्यारा था ।।५।।

॥ लावणी ॥

मात पिता रमणी संग दीक्षा लीनी,
जिन शासन की महती सेवा कीनी ।
वीर प्रभु के शासन के अधिकारी,
चरम केवली हुए महाव्रत धारी ।
धन्य-धन्य योगीश्वर परउपकारी ।। लेकर० ।। ३ ।।

अर्थः—जंवू ने माता-पिता के आग्रह से आठ उच्च कुलीन कन्याओ से शादी की । श्वसुर पक्ष की तरफ से ९९ करोड़ स्वर्ण मुद्राओ का दहेज मिला । फिर भी माया में मोहित नही हुए । उन्होने प्रथम मिलन की रात्रि मे भोग के वदले आठों रमणियो को योग की शिक्षा दी । सोनैया चुराने को आये हुए प्रभवसिह आदि पाच सौ चोरों को वोध दिया और प्रात काल आठो वधुओ और पॉच सौ चोरो के साथ माता-पिता के सामने संयम अ गीकार करने की अनुमति लेने को उपस्थित हुए । सेठ ऋषभदत्त ने पुत्र का अकल्पित प्रभाव देखा तो वे भी प्रभावित हुए और जंवू के साथ दीक्षित होने को तैयार हो गये । इस प्रकार उस तरुण वैरागी ने माता पिता और रमणियो को संग लेकर पॉचसौ सत्ताईस व्यक्तियो के साथ दीक्षा ग्रहण की । उसने अपने उत्कृष्ट त्याग वैराग्यपूर्ण जीवन से शासन की वड़ी सेवा की । सुधर्मा स्वामी के वाद वे शासन के उत्तराधिकारी हुए और वीर शासन के अ तिम केवली कहलाये । उन परमयोगी और महान् उपकारी आचार्य जम्वू को कोटि-कोटि प्रणाम है ।।३।।

॥ लावणी ।।

द्वितीय पट्ट पर गणपति का पद पाया,
केवल पाकर शिवरमणी को ध्याया ।
केवल ज्ञानादिक दश बात विलाई,
वर्ष चौसठे लिया मुक्तिपद पाई ।
हम सब पर उपकार किया अतिभारी ।। लेकर० ।।४।।

अर्थः—सुधर्मा के पश्चात् जवू ने आचार्य पद प्राप्त किया और ये

द्वितीय पट्टधर आचार्य हुए। केवलज्ञान पाकर शिवरमणी के अधिकारी हुए। आपके बाद दश बोलो का इस भारतवर्ष मे विच्छेद हो गया; जो इस प्रकार है :

मणपरमोहि पुलाए, आहार खवग उवसमे कप्पे।
संजमतिग केवलसिज्जणा- य जम्बुंम्मि वुच्छिन्ना ॥

अर्थात् (१) परम अवधिज्ञान, (२) मन: पर्यायज्ञान, (३) केवल ज्ञान, (४) परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय और, यथाख्यात चारित्र रूप संयम-त्रिक (५) उपशम श्रेणी, (६) क्षपक श्रेणी, (७) जिनकल्प, (८) पुलाक-लब्धि, (९) ओहारक लब्धि और (१०) मोक्षगमन।

आप सोलह वर्ष गृहस्थ रहे फिर सयम लेकर वीस वर्ष सामान्य साधु और चवालीस वर्ष आचार्य पद पर रहकर कुल ८० (अस्सी) वर्ष की आयु भोग कर निर्वाण को प्राप्त हुए।

वीर निर्वाण के चौसठवे वर्ष में आपका निर्वाण हुआ। वर्तमान का आगम साहित्य आपही की महती कृपा का फल है। ॥४॥

आचार्य प्रभवा—

॥ लावणी ॥

जम्बू के पट्ट देखो प्रभवा राजै,
चोराधिप से श्रमणाधिप पद छाजे।
जम्बू की संगति का यह फल पाया,
चौर पांचसौ के संग व्रत अपनाया।
हुआ प्रभावक शासन का अधिकारी ॥ लेकर० ॥५॥

अर्थ—जंवू के बाद तीसरे पट्टधर आचार्य प्रभवा हुए। चोरनायक से श्रमणनायक के महत्त्वपूर्ण पद को प्राप्त करना, परम वैरागी जवू की सगति का ही फल है। उन्होने पॉच सौ चोरो के साथ दीक्षाव्रत ग्रहण किया और वीर शासन के बडे प्रभावशाली आचार्य हुए ॥५॥

॥ लावणी ॥

वित्तहारी अब दुर्मत हरने वाला,
कर्मशूर से धर्मशूर हुआ आला ।
ज्ञान क्रिया से शासन को दीपाया,
अपने पद पर पटधारी नही पाया,
श्रुतबल से आगे की बात विचारी ॥ लेकर० ॥६॥

अर्थ —विंध्य-नरेश का प्रिय पुत्र प्रभवसिंह जो कभी चोर के रूप मे कुख्यात था, वही अब दुर्मति हरनेवाला सत हो गया, दुष्कर्मकर्त्ता धर्म-नेता बन गया। उन्होने ग्यारह वर्ष तक आचार्य पद पर रहकर ज्ञान-क्रिया से शासन को दीपाया। अन्त में अपने पद पर योग्य उत्तराधिकारी को न पाकर श्रुतज्ञान के बल से भविष्य की बात सोचने लगा ॥६॥

॥ लावणी ॥

राजगृह मे शय्यंभव को जाना,
प्रतिबोधन हित मुनि द्वय को भिजवाना ।
आ मुनि बोले तत्त्व न जाना भाई,
सुनकर चौंके याज्ञिक मन के मांहीं ।
कहे गुरु से सत्य बात कहो सारी ॥ लेकर० ॥७॥

अर्थ —आचार्य प्रभव ने श्रुतज्ञान मे उपयोग लगाकर राजगृही के शय्यभव भट्ट को योग्य उत्तराधिकारी समझा। फलस्वरूप उसको प्रतिबोध देने के लिये मुनियुगल को प्रेषित किया। शय्यभव के द्वार पर पहुँच कर मुनियो ने कहा,—"हा कष्टं तत्त्वं न ज्ञात"। याज्ञिक शय्यंभव इस बात को सुनकर मन ही मन चौंका और कलाचार्य के पास जाकर पूछने लगा, "सत्य बतलाओ तत्त्व क्या है?" ॥७॥

॥ लावणी ॥

कलाचार्य भयभीत कहे सुन स्याना,
तत्त्व जिनेश्वर मार्ग रतो नहि छाना ।
प्रभवसूरि से भेद समझकर जानो,
दुखमुक्ति का मार्ग वही पहिचानो ।
यज्ञ दिलावे स्वर्ग न भवभय हारी ॥ लेकर० ॥८॥

अर्थ —शय्यभव भट्ट की वात सुनकर कलाचार्य भयभीत हुए और वोले—"वास्तव मे जिनेश्वर का मार्ग ही तत्त्व है, और उसका सही मर्म यहां विराजित प्रभवसूरि समझा सकते है। वही दुखमुक्ति का सच्चा मार्ग है। यज्ञ तो देवता की प्रसन्नता के लिये किया जाता है, उसमे दिये हुए दानादि से शुभ कर्म का वध होकर कभी स्वर्ग मिल सकता है। परन्तु वह भवभ्रमण को नही टाल सकता ॥८॥

॥ लावणी ॥

प्रभवसूरि के निकट आय यो बोले,
तत्त्व बताओ तो हम होगे चेले ।
भेद खोलकर गुरुवर ने समझाया,
शय्यंभव के मन का भरम मिटाया ।
छोड़ सम्पदा और त्याग दी नारी ॥ लेकर० ॥९॥

अर्थः—कलाचार्य की वात सुनकर शय्यभव की जिज्ञासा जागृत हुई और वह आचार्य प्रभवा के चरणो मे आकर बोला —"महाराज! तत्त्व वताइये, मै आपका शिष्य वनने को तैयार हू। आचार्य ने भी भेद खोल कर धर्म का सही मार्ग समझाया, जिससे शय्यभव के मन का सशय दूर हुआ और उसने घर, दारा एव वैभव का त्याग कर उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया ॥९॥

॥ लावणी ॥

शय्यंभव ने गुरु से ज्ञान मिलाया ,
बड़े भाग से चौदह पूर्व धराया ।
गुरु के पीछे शासन को सभाला ,
श्रमणवर्ग भी था मोतिन की माला ।
दीपे शासन वीर प्रभु का भारी ॥लेकर० ॥ १० ॥

अर्थः —आचार्य प्रभवा से दीक्षित होकर शय्यभव ने तत्त्वातत्त्व का ज्ञान मिलाया और अहोभाग्य से चौदह पूर्व के ज्ञान का ज्ञाता वन गया। उन्होने गुरु के पीछे धर्मशासन को अच्छी तरह सभाला। उस समय के

(१) स्वर्ग कामो यजेत ।

श्रमण-श्रमणी भी माला के मोती की तरह एक दूसरे से वढ-चढ कर दीप्तिमान थे अत. प्रभु महावीर का शासन तेजोमय दीपता रहा ॥१०॥

॥ लावणी ॥

घर में पीछे पुत्र हुआ सुखदाई,
मनक नाम से वतलाती थी माई।
भाग्य योग से उसने सन्मति पाई,
मित्रजनो ने उसको कड़ी सुनाई।
खेल-खेल में मित्रों ने कही खारी ॥ लेकर० ॥११॥

अर्थ — शय्यंभव जव दीक्षा लेने को तैयार हुए तव उनकी पत्नी सगर्भा थी। सम्वन्धियो ने उनसे गर्भ के सम्वन्ध मे पूछा, तव उसने लज्जावश कहा—"मनाक् = कुछ है।" जव कुछ समय के वाद पुत्र का जन्म हुआ तो लोग उसे 'मनक' नाम से पुकारने लगे। किसी समय वालमण्डल के साथ खेलते हुए मनक को साथियो ने खेल-खेल में यह कह डाला कि "वाप का तो पता ही नही है और वडी-वडी वाते मारता है।" भाग्ययोग से मनक की मति वदल गई ॥११॥

॥ लावणी ॥

पूछे मात से तात कहाँ वतलाओ,
वोले जननी गुरुचरणो में जाओ।
तात तुम्हारे सयम व्रत ले चाले,
गर्भकाल से मैंने तुमको पाले।
अनुमति लेकर चला वाल सुविचारी ॥लेकर०॥ १२ ॥

अर्थ.— मनक भी मित्रो की वात सुनकर खेलता-कूदता भूल गया और माँ के पास आकर पूछने लगा,—"माता मेरे पिता कौन और कहाँ है? माता वोली,—"वेटा तुम्हारे पिता ने तो तुम्हारे जन्म से पहले सयमव्रत ले रखा है। मै ही गर्भकाल से तुम्हारा पालन करती आ रही हूँ। तुमको यदि दर्शन करने है तो गुरुचरणो मे जाओ, वहा तुम्हारे पिता मिलेगे। वालक मनक माता की अनुमति प्राप्त कर, पिता शय्यंभव के दर्शन को चल पड़ा ॥१२॥

॥ लावणी ॥

चंपा के स्थंडिल में दर्शन पाये,

वंदन कर मुनि से निज हाल सुनाये ।
चला बाल आवास गुरु के आया,
भेद समझ गुरचरणे शीश नवाया ।
योग्य समझ गुरु ने दी सीख करारी ॥ लेकर० ॥१३॥

अर्थ —मुनि शय्यभव का पता लगाते हुए ज्योंही बालक चम्पा नगरी के पास पहुंचा, जगल मे ही उसको मुनि शय्यभव के दर्शन हो गये । उसने मुनि को वदन कर अपना हाल सुनाया और पूछने लगाकि आप मुनि शय्यभव को जानते हो तो वतलाइये । शय्यभव ने उसको अपने साथ चलने को कहा और उपासरे मे आकर गुरुचरणों मे वंदन कर बालक का परिचय दिया । बालक भी पिता श्री का भेद पाकर प्रसन्न हुआ । गुरु ने उनको योग्य समझकर निम्न प्रकार से प्रतिबोध दिया ॥१३॥

॥ लावणी ॥

जग में आकर जिसने धर्म कमाया,
जीवन अपना उसने सफल बनाया ।
बोला बालक चरणशरण मे ले लो,
जन्म सफल करने की शिक्षा दे लो ।
भाव सहित मुनिव्रत लिया उसने धारी ॥ लेकर० ॥१४॥

अर्थ—भाई ! इस ससार मे अगणित जीव जन्म धारण करते और मर जाते हैं पर वास्तव मे जीवन उसी का सफल है, जिसने ससार मे जीवन पाकर कुछ धर्म कमाया,देवगुरु की सेवा की और स्व-पर को पापमार्ग से बचाने का प्रयत्न किया । यो तो अनन्तवार मनुष्य जन्म की सामग्री पा चुके हो । पर विषय कषाय मे उलझ कर उसका लाभ नही उठा पाये अत· अबभी उठो और कुछ आत्म-कल्याण का साधन करलो । उपदेश को सुनकर बालक गुरु शय्यभव के चरणो मे दीक्षित हो गया और प्रयत्नपूर्वक गुरुवचनो पर चलने लगा ॥१४॥

॥ राधे० ॥

मनक मुनि ने जन्म सुधारण,
साधन करना ठाना है ।

विनय सहित शिक्षा ले गुरु से,
निज स्वरूप पहचाना है ॥५॥

अर्थ :—गुरु के सदुपदेश से दीक्षित होकर मनक मुनि ने जन्म सफल करने का निश्चय किया। उसने गुरु से सविनय शिक्षा प्राप्त की और अपने शुद्ध स्वरूप को पहचान लिया ॥५॥

गुरु का उपदेश—

॥ तर्ज ख्याल ॥

गुरुदेव बतावे,
साधन समझावे मुक्तिमार्ग का ॥गुरु०॥टेर॥
खाना पीना और घूमना,
यतना से सब काम।
विधियुत चलते पाप न लागे,
मिले मुक्ति का धाम हो ॥गुरु०॥१॥
मनक कहे गुरुदेव बताओ,
सब शास्त्रो का सार।
अल्प आयु लख शय्यंभव ने,
किया शास्त्र उद्धार हो ॥गुरु०॥२॥
दश अध्याय पूर्व से लेकर,
रचना की तैयार।
काल विकाल में पूर्ण किया यो,
दशवैकालिक धार हो ॥गुरु०॥३॥

अर्थ—मनक मुनि को शिक्षा देते हुए गुरु बोले, शिष्य ! पाप कर्म से बचने के लिये आवश्यक है कि खाना, पीना, घूमना, सोना और भाषण आदि सब काम यतना से किये जायँ, जिससे आत्मा हल्की होकर मुक्तिमार्ग की ओर अग्रसर हो सके ॥१॥

मनक बोले, गुरुदेव ! मुझे ऐसा मार्ग बतलाओ कि मै अल्प समय मे ही अपना कल्याण कर सकूँ। गुरुदेव शय्यभव ने उसके आयुकाल का विचार किया तो मात्र छ महिने का ही आयु शेष पाया। इतने अल्पकाल में मनक मुनि ज्ञान-क्रिया का सम्यक् आराधन कर किस प्रकार अपना

कल्याण कर सके, इस पर चिन्तन करते हुए उन्होने चौदह पूर्व से दस अध्ययनो का उद्धरण कर अलग एक सूत्र की रचना की। संध्या समय मे वह पूर्ण सम्पन्न हुआ, इसलिये इस सूत्र का नाम दशवैकालिक रखा गया ॥२॥ ॥ ॥

॥ लावणी ॥

वर्ष अट्ठावीस गृहजीवन में गाले,
एकादश वत्सर गुरुचरण निहाले ।
युग प्रधान पद वर्ष तेवीस संभाला,
वीर काल अट्ठाणूं सुर थये आला ।
मनक मुनि ने भी ली सेवा धारी ॥लेकर०॥१५॥

अर्थ:—वीर सवत् ७५ मे प्रभवाचार्य के स्वर्गस्थ होने पर मुनि शय्यभव आचार्य पद पर आसीन हुए, जिसका परिचय इस प्रकार है— अट्ठाईस वर्ष तक गृहस्थ जीवन में एक पडित के रूप मे रहे, और ग्यारह वर्ष तक उन्होने आचार्य प्रभव स्वामी के पास विनयपूर्वक शिक्षा ग्रहण की। फिर उनके स्वर्गवास होने पर युग प्रधान आचार्य के पद पर आसीन होकर (२३) तेवीस वर्ष तक शासन चलाया और वीर निर्वाण अठाणवे वर्ष मे समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण कर स्वर्ग पधारे ॥१५॥

॥ तर्ज ख्याल ॥

मनक शिष्य के साधनहित वे,
पूर्ण लगाते ध्यान ।
मनक मुनि ने छः महिने में,
किया आत्म कल्याण हो ॥गुरु०॥४॥

अथ:—आचार्य शय्यभव ने मनक मुनि के आत्मकल्याणार्थ पूरी तत्परता से ध्यान दिया और मनक मुनि ने भी गुरु के निर्देशानुसार चल कर छः मास के अल्प समय मे ही अपना कल्याण कर लिया ॥४॥

॥ सू० ॥

मनक भिक्षु के स्वर्ग गमन से, नयन भराये आज ।
यशोभद्र ने पूछा कारण, भेद बताया खास हो ॥गुरु०॥५॥

अर्थ :—छः मास के वाद जव मनक मुनि ने कालधर्म प्राप्त किया, तव शय्यंभव सूरि के नयनो मे अश्रु वह आये । यशोभद्र आदि शिष्यो को यह देख कर आश्चर्य हुआ । उन्होने गुरुदेव से विज्ञप्ति कर इसका कारण पूछा, प्रत्युत्तर मे शय्यभव ने सारी हकीकत वतलाई जिसे सुनकर शिष्य-गण वोले—महाराज ! आपने आज तक हमे यह नही वतलाया कि आपका संवध लघु मुनि के साथ पिता-पुत्र रूप से है, अन्यथा हम भी कुछ सेवा कर सकते । गुरु ने कहा, आप मेरा पुत्र जानते तो उससे सेवा नही कराते और वह भी अपना कर्त्तव्य भूल जाता । मैंने मनक मुनि के लिये दशवैकालिक सूत्र का पूर्वो से उद्धरण किया है, जिसे अव अलग सग्रह रूप से समाप्त करना चाहता हूँ ॥५॥

॥ सू० ॥

दस अध्याय संघ आग्रह थी, पीछे नही समाये ।
धन्य किया उपकार संघ पर, बार बार वलि जायें हो ॥गुरु०॥६॥

अर्थ :—संघ और मुनि यशोभद्र के आग्रह से उन्होने दशवैकालिक के अध्ययनो को पूर्वो मे समाप्त नही किये । वह आज भी श्रमण श्रमणी-वर्ग के लिये आचार शिक्षा का स्पष्ट मार्गदर्शन कर रहा है । उन्होने सघ पर वडा उपकार किया, अतः वे हमारे लिये चिरस्मरणीय है । ॥६॥

मुनि यशोभद्र

॥ लावणी ॥

पाटलीपुर का यशोभद्र था नामी,
सुन कर के उपदेश हुआ शिवकामी ।
भर तरुणाई मे संयम स्वीकारा,
चवदह वत्सर ज्ञान गुरू से धारा ।
गुरू आज्ञा पालन की मन मे धारी ॥लेकर॥१६॥

अर्थ :—शय्यभव के पश्चात् आचार्य यशोभद्र हुए । ये पाटलीपुर के प्रसिद्ध ब्राह्मण पडित थे । शय्यभव सूरि का उपदेश पाकर वे विरक्त हो गये और वावीस वर्ष की पूर्ण यौवन अवस्था मे सयम धारण कर चौदह

वर्ष तक गुरुचरणो मे ज्ञानाराधन करते रहे। गुरुआज्ञा पालन ही उन्होने अपना मुख्य व्रत मान रखा था ॥१६॥

॥ लावणी ॥

वीर काल गये वर्ष अट्ठाणूँ पीछे,
शय्यंभव किया काल सुनो अब नीचे।
यशोभद्र ने गुरु से ज्ञान मिलाया,
योग्य समझ उनको शासन संभलाया।
रहे वर्ष पच्चास संघ अधिकारी ॥लेकर॥१७॥

अर्थ :—वीर निर्वाण ९८ की साल जब आचार्य शय्यभव का स्वर्गवास हो गया, तो उनके प्रमुख शिष्य यशोभद्र ने शासन का भार सभाला। उन्होने विनयपूर्वक गुरु से ज्ञान मिलाया, अतः सघ ने भी योग्य समझकर आपको ही उत्तराधिकारी नियुक्त किया। आप पचास वर्ष तक कुशलता से चतुर्विध सघ का सचालन करते रहे ॥१७॥

॥ लावणी ॥

यशोभद्र मुनि शासन को दीपाते,
चरणों में पडितजन बहु शोभाते।
वीर काल शत पर अठचालिस जानो,
हुए स्वर्ग के देव महर्द्धिक मानो।
शिष्य हुए चालीस महाव्रत धारी ॥लेकर॥१८॥

अर्थ :—आचार्य यशोभद्र भी चौदह पूर्व के ज्ञाता थे, उनकी विद्वत्ता से प्रभावित हो बडे-बडे पडित उनके चरणो मे रहते। पचास वर्ष के दीर्घकालीन संयम का पालन कर इन्होने जिन शासन को दीपाया और वीर सवत् १४८ मे स्वर्गवासी होकर महर्द्धिक देव हुए। उनके सभूतिविजय और भद्रबाहु जैसे चालीस शिष्य थे ॥१८॥

॥ लावणी ॥

संभूतिविजय भी सेवा में चल आये,
सुन कर के उपदेश ज्ञान मन भाये।
चौदहपूर्वी गुरुपद के अधिकारी,
अर्द्धशती कम दोय (४८) रहे व्रत धारी।
पूर्ण आयु नवति (९०) वत्सर था भारी ॥लेकर॥१९॥

अर्थ:—महिमा सुनकर पंडित,सभूतिविजय भी यशोभद्र की सेवा मे आये और उनके उपदेश सुन कर दीक्षित हो गये। चौदह पूर्व के ज्ञाता बनकर ये भी यशोभद्र के उत्तराधिकारी हुए। ये आठ वर्ष तक आचार्य पद पर रहे और कुल ४८ वर्ष तक सयम का पालन कर ९० वर्ष की पूर्ण आयु मे स्वर्गवासी हुए ॥१९॥।

॥ लावणी ॥

स्थूलभद्र जंबू आदिक थे बारे,
स्थविर शिष्य जिन शासन सेवा धारे।
आठ वर्ष गणि पद रह स्वर्ग सिधारे,
जगप्रसिद्ध फिर भद्रबाहु पद धारे।
एक तंत्र शासन चलता सुखकारी ॥लेकर॥२०॥

अर्थ—आपके नन्दनभद्र, उपनन्द, तीसभद्र, गणिभद्र, पूर्णभद्र, स्थूलभद्र, ऋजुमती, जम्बू, दीर्घभद्र, पाण्डुभद्र आदि बारह प्रमुख शिष्यो में स्थूलभद्र, जंबू आदि मुख्य थे। इनमे कई शिष्य स्थविर और शासन की सेवा करने मे कुशल थे। आठ वर्ष तक आचार्य पद पर रहने के पश्चात् इनके पट्ट पर जगत्प्रसिद्ध लघु गुरुभ्राता आर्य भद्रबाहु विराजे। इस समय तक चतुर्विध संघ मे एकतंत्र शासन चलता रहा। यह श्लाघनीय बात है ॥२०॥

भद्रबाहु का परिचय और भविष्य का कथन

॥ लावणी ॥

पुत्रजन्म की देन बधाई आवे,

भद्रबाहु नहिं भूप भवन में जावे ।
मंत्री ने गुरु को यह अर्ज सुनाई,
कहा साथ ही जायेंगे हम भाई ।
सात दिवस की अल्प आयु दुखकारी २ ।।लेकर।।२१।।

अर्थ :—प्रतिष्ठानपुर के प्राचीन गोत्रीय ब्राह्मण विद्वान् भद्रबाहु ने भी आचार्य यशोभद्र के उपदेश से प्रभावित होकर उनके पास दीक्षा ग्रहण की और गुरु सेवा मे रहकर चौदह पूर्व का ज्ञान सपादन किया । योग्य देख कर गुरु ने उनको आचार्यपद प्रदान किया । एक समय की वात है कि नद राजा को लम्वे समय से एक पुत्र की प्राप्ति हुई अतः सव लोग वधाई देने आये परन्तु मुनि भद्रबाहु नही आये । विरोधियो को इस कारण से मुनि भद्रवाहु के विरुद्ध वात वनाने का मौका मिलेगा, यह देख मत्री शकडाल ने गुरु को निवेदन किया तो उत्तर मिला कि कुछ ही दिनो में दूसरा प्रसंग आने वाला है अतः साथ ही जाना ठीक रहेगा । वालक की आयु मात्र सात दिन की ही ज्ञात होती है । वराहमिहिर ने सौ वर्ष की आयु वतलाई थी जव कि भद्रवाह ने सात दिन के वाद बिडाल के सयोग से वालक की मृत्यु होनी वतलाई । वास्तव मे उनकी वात सही निकली और राजा नन्द उनका भक्त बन गया ।।२१।।

|| लावणी ||

भद्रबाहु थे जिन शासन में नामी,
निमित्त बोले शासन के हित कामी ।
व्यंतर ने पुर में उत्पात मचाया,
स्तोत्र बना कर सबका कष्ट मिटाया ।।
शास्त्रो पर निर्युक्ति की विस्तारी ।।लेकर।।२२।।

अर्थ :—भद्रवाहु चौदहपूर्व के अतिरिक्त निमित्तज्ञान के भी ज्ञाता थे, उन्होने शासनहित के लिये निमित्त ज्ञान का प्रयोग किया । वराह-मिहिर अपनी वात के मिथ्या होने से वहुत दुखी हुआ और आर्त्तध्यान मे मर कर वह, व्यतर योनि मे उत्पन्न होगया तथा वैर का वदला लेने हेतु वह नगर मे उत्पात मचाने लगा । सघ ने उपद्रव से चिंतित हो कर भद्रवाहु से निवेदन किया । इस पर आचार्य ने "उवसग्गहर स्तोत्र" की रचना की

और नगर का सकट दूर किया। भद्रवाहु कृत नियुक्तिया भी मिलती है। इतिहासज्ञो की राय मे निमित्तज्ञानी भद्रवाहु और नियुक्तिकार भद्रवाहु भिन्न-भिन्न माने गये है ॥२२॥

॥ लावणी ॥

द्वादश वत्सर दुष्काली जब आई,
साधकगण को भिक्षा की कठिनाई।
फिर सुकाल में श्रमण सभा भरवाई,
श्रुतरक्षा की लगन रही मन छाई।
करी वाचना अंग इग्यारह धारी ॥लेकर०॥२३॥

अर्थ:—जिस समय मगध मे वारह वर्ष लंवी दुष्काली पडी, उस भीपण दुष्काली मे त्यागी श्रमण-श्रमणियो को भिक्षा दुर्लभ हो गई। भद्रवाहु उस समय नैपाल गये हुए थे। पीछे प्रमुख संतो के नेतृत्व मे सुकाल के समय पटना में शास्त्रवाचना हेतु श्रमणो की एक परिपद भरी गई। सव के मन मे श्रुत-रक्षा की प्रवल भावना होने से वाचना मे ग्यारह अंगो के पाठ स्थिर किये गये। जिनको जो अभ्यास था उसे मिलाकर पाठो का संकलन किया गया। यही प्रथम वाचना, 'पाटलीपुत्र वाचना" कही जाती है ॥२३॥

॥ लावणी ॥

दृष्टिवाद के ज्ञाता नहि कोई उनमें,
भद्रवाहु नैपाल गये साधन में।
आगम रक्षा हित संदेश पठाया,
युगल साधु जा कर सदेश सुनाया।
महाप्राण की मैने की तैयारी॥ लेकर० ॥२४॥

अर्थ:—उपस्थित श्रमणो मे कोई दृष्टिवाद का ज्ञाता नही था, क्योकि भद्रवाहु महाप्राण ध्यान के साधन हेतु नैपाल गये हुए थे अतः दृष्टिवाद श्रुत का सरक्षण कैसे किया जाय? सघ ने भद्रवाहु को सादेश भेजकर वुलवाने का निर्णय किया। आगम-रक्षा के लिये सघ ने दो मुनियो के साथ उनके पास सदेश भेजा। भद्रवाहु ने मुनियो द्वारा सघ का सदेश

सुनकर कहा, मैने महाप्राण ध्यान की साधना आरंभ कर दी है, फलस्वरूप इस समय मै आने मे असमर्थ हूँ ॥२४॥

॥ लावणी ॥

सुनकर उत्तर संघ रोष में आया,
मुनियुग को फिर आज्ञा दे भिजवाया।
महामुनि ने कहा वाचना दूँगा,
संघ कार्य कर पीछे ध्यान धरूँगा।
अनुग्रह कर दे दी आज्ञा हितकारी ॥लेकर०॥२५॥

अर्थ:—मुनियो द्वारा भद्रबाहु का उत्तर सुन कर सघ के मन मे रोष भर आया। सघ ने पुन मुनियो को भेजा और आदेश देते हुए पुछवाया कि सघ की आज्ञा न मानने का प्रायश्चित क्या होगा ? महामुनि भद्रबाहु ने उत्तर मे कहा कि आज्ञा न मानने पर सघ को बाहर करने का अधिकार है। मुझे आज्ञा शिरोधार्य है पर कोई मुनि यहा आवे तो मै वाचना दे सकूँगा। वाचना का कार्य पूर्ण कर पीछे साधना करूँगा। अनुग्रह कर संघ मुझे आज्ञा प्रदान करे तो हितकर है। भद्रबाहु ने प्रतिदिन सात वाचना देने का निर्णय किया ॥२५॥

॥ लावणी ॥

स्थूलभद्र को योग्य ज्ञान के माना,
श्रमण अन्य (पंचशत) भी जिज्ञासु थे नाना।
वे शिक्षा लेने भद्रबाहु पै आये,
अन्य मुनी चंचल मन नहिं ठहराये।
स्थूलभद्र ने तन मन सेवा धारी ॥लेकर०॥२६॥

अर्थ:—भद्रबाहु का हार्दिक विचार समझ कर संघ ने यही उचित समझा कि उनकी भी साधना चलती रहे और सघ का कार्य भी होता रहे, यह अच्छा है। स्थूलभद्र ज्ञानप्राप्ति के लिये योग्य है, अत. उन्हे भद्रबाहु के पास भेज कर दृष्टिवाद-श्रुत का सरक्षण किया जाय। संघ ने स्थूलभद्र के साथ अन्य पाच सौ जिज्ञासु मुनियो को वहा शिक्षणार्थ प्रेषित किया किन्तु जब भद्रबाहु ने वाचना देना आरभ किया तो अन्य मुनि अधिक

समय तक ठहर नही सके । केवल स्थूलभद्र ही तन-मन लगाकर सेवा मे डटे रहे ।।२६।।

|| लावणी ||

पूर्व सीख दशपूर्वो विद्या पाई,
दर्शनहित यक्षादि आर्यिका आई ।
भगिनी को विद्या का परिचय देने,
विद्या का परिचय भगिनी को करवाने,
गुहा द्वार हरि रुप विराजे छाने ।
सती देख गणिवर से आय पुकारी ।।लेकर।।२७।।

अर्थः—स्थूलभद्र ने अविचल निष्ठा और लगन से अध्ययन किया । जब दशम पूर्व का अध्ययन समाप्त हुआ, एवं स्थूलभद्र के अभ्यास की सौरभ फैली तो उनके ससार पक्ष की भगिनी यक्षा आदि आर्यिकाएँ दर्शन की उत्कण्ठा लिये आई । आचार्य से पूछने पर मालूम हुआ कि स्थूलभद्र मुनि एकात में अभ्यास कर रहे है । आज्ञा लेकर वे वहाँ दर्शन को गई । उस समय स्थूलभद्र के मन मे भगिनी साध्वी को अपनी विद्या का परिचय देने का कौतूहल जाग उठा और वे सिह का रूप बनाकर गुहा द्वार पर विराज गये । साध्वी सिह रूप को देख कर चौकी और आकर आचार्य को निवेदन किया ।।२७।।

|| राधे० ||

भद्रबाहु ने मर्म समझ कर, शिक्षण देना बंद किया ।
अति आग्रह और संघ विनय से, मूल मात्र का ज्ञान दिया ।।६।।

अर्थः—भद्रबाहु ने जब यह मर्म समझा तब उनको आश्चर्य हुआ कि स्थूलभद्र जैसे मुनि भी इस ज्ञान को नही पचा सके तब औरो का क्या होगा ? उन्होने आगे शिक्षण देना बन्द कर दिया । सघ के अति आग्रह और स्थूलभद्र की प्रार्थना पर आगे के पूर्वो का मात्र मूल पाठ सिखाया ।।६।।

|| लावणी ||

विनयशील श्रावक नहि पक्ष बंधाया,

शासनहित में सबका योग सवाया ।
स्थूलभद्र ने भी आज्ञा स्वीकारी,
धन्य-धन्य ऐसे मुनि की बलिहारी ।
दीपे शासन अद्भुत जोत करारी ।।लेकर०।।२८।।

अर्थः—विनयशील श्रावक किसी के पक्ष में नही पडे । और सबने शासनहित मे अपना बराबर योग दिया । स्थूलभद्र ने भी अपनी भूल के साथ सहर्ष आचार्य की आज्ञा स्वीकार की। धन्य है ऐसे मुनियो को, जिनके विनय एव विवेक से शासन अखडित रह सका । ऐसे ही आत्मार्थी संतों से जिन शासन की ज्योति दैदीप्यमान रहती है ।।२८।।

।। लावणी ।।

सौ पर सित्तर वीर काल जब आया,
भद्रबाहु मुनिराज स्वर्ग पद पाया ।
पैंतालीस गृहवास सप्तदश मुनिता,
चवदह वत्सर रहे संघ के नेता ।
स्थूलभद्र आचार्य हुए गुणधारी ।। लेकर० ।।२९।।

अर्थः—वीर सं० १७० के वर्ष भद्रवाहु स्वामी स्वर्ग पधारे । ये पैंतालीस वर्ष गृहस्थ दशा में रहे, सत्रह वर्ष सामान्य साधु रूप से और चौदह वर्ष युग प्रधान आचार्य रूप से संघ का संचालन करते रहे । इनके वाद महागुणवान् मुनि स्थूलभद्र आचार्यपद पर आसीन हुए ।।२९।।

।। लावणी ।।

तीस वर्ष गृह रह के मुनिपद धारा,
चौवीस वत्सर साधन कर मन मारा ।
वर्ष पैंतालीस गणनायक रहे भारी,
पूर्ण आयु निन्नाणु वर्ष की पारी ।
दो सौ पन्द्रह सुर पदवी लही प्यारी ।। लेकर० ।।३०।।

अर्थः—स्थूलभद्र मुनि तीस वर्ष घर मे रहे, चौवीस वर्ष तक सामान्य साधु रूप से साधना कर उन्होने मनोविजय किया और फिर पैंतालीस वर्ष युग प्रधान आचार्य के रूप मे शासन की सेवा की। इन्होने पूर्ण आयु

निन्नाणवे वर्ष की पाई। वीर संवत् दो सौ पंद्रह में आप सुर-पद के अधिकारी हुए ॥३०॥

॥ लावणी ॥

वीरकाल दो सौ चवदह जब आया,
अव्यक्तवादी निन्हव तब कहलाया।
वलभद्र राय ने दूत भेज बुलवाये,
हस्ति-कटक मर्दन से बोध कराये।
लज्जित हो मुनि ने ली भूल सुधारी ॥ लेकर० ॥३१॥

अर्थः—वीर निर्वाण सवत् दो सौ चवदह की साल आपाढाचार्य के शिष्यों से अव्यक्तवादी निन्हव हुआ। राजा वलभद्र ने जब उनको नगर के उपवन में आये जाना तो दूत भेज कर वुलवाया और हाथी के पैरो के नीचे मर्दन करने का आदेश दिया। साधु वोले—"अरे श्रावक! तुम साधुओ के साथ अभद्र व्यवहार कैसे कर रहे हो?" राजा ने कहा—"महाराज! न मालूम तुम साधु हो या साधु के वेप मे चोर हो। तुम्हारे मत से साधु-असाधु का सही निश्चय नही होता। साधुओ ने लज्जित हो अपनी भूल सुधार ली। वे फिर मूल मार्ग मे स्थिर हुए और परस्पर वदन-व्यवहार करने लगे।३१

॥ लावणी ॥

आर्य महागिरि सुहस्ती मुनि राजे,
स्थूलभद्र के पट्ट गणी पद छाजे।
महागिरि जिनकल्प धर्म आराधे,
सुहस्ती भी विनय भाव नित साधे।
संप्रति को हुआ बोध देख व्रतधारी ॥ लेकर० ॥३२॥

अर्थः—आचार्य स्थूलभद्र के पट्ट पर आर्य महागिरि और सुहस्ती विराजमान हुए। ये दोनो स्थूलभद्र के शिष्य होने से गुरुभाई थे। स्थूलभद्र के पश्चात् आर्य महागिरि आचार्य हुए। (ये तीस वर्प तक घर में रहे, चालीस वर्ष सामान्य मुनिपद पर साधना करके फिर आचार्य हुए, तीस वर्ष आचार्य पद से शासन की सेवा कर सौ वर्ष की आयु मे स्वर्ग के अधिकारी वने)। आचार्य महागिरि मुख्य रूप से साधनाप्रिय थे अतः अनेकों

भव्यजनों को दीक्षित कर अन्त मे इनकी इच्छा कठोर साधना की हुई। जिन कल्प का विच्छेद होने पर भी वे गच्छ मे रह कर एकल विहार की साधना करने लगे। वे वाचना मात्र करते, और गच्छ की शेष व्यवस्था आर्य सुहस्ती सभालते। सुहस्ती विद्वान् और योग्य होकर भी महागिरि का पूर्ण सम्मान रखते थे। कहा जाता है कि सुहस्ती को देख कर सप्रति राजा को बोध हुआ और वह उनकी प्रेम से सेवा करने लगा। इसी बात को आगे पद्य मे इस प्रकार कहा गया है ।। ३२ ।।

।। लावणी ।।

स्थूलभद्र के पट्ट (पर) महागिरि राजे,
चरणसाधना जिनकल्पिक सम साझे।
आर्य सुहस्ती संप्रति के मन भाये,
सुभट भेज कर धर्म प्रचार कराये।
दोनो प्रतिभाशील धर्मविस्तारी। लेकर० ।। ३३ ।।

अर्थः—स्थूलभद्र के पीछे आर्य महागिरि आचार्य पद पर आसीन हुए और जिनकल्प के समान आचार पालने लगे। आर्य सुहस्ती ने जब सप्रति को उपदेश दे कर शासन सेवा मे प्रेरित किया तब उसने अनार्य प्रदेश मे भी सुभट भेज कर जैन धर्म का प्रचार करवाया। कहा जाता है कि सुभटो ने साधु वेष मे जा कर लोगो को साधु धर्म के आचार से परिचित किया। दोनो आचार्य प्रतिभाशाली थे, इन्होने शासन की बड़ी सेवा की ।। ३३ ।।

।।लावणी।।

वीरकाल दो बीस भ्रान्ति इक छाई,
महागिरि का पौत्र अश्वमित्र ताई।
पूर्व पाठ में उसका मन बदलाया,
नव दृष्टि पाकर भी नहिं पलटाया।
गुरु ने भी तब प्रकट बात कही सारी ।। लेकर० ।।३४।।

अर्थः—वीर सवत् दो सौ बीस के समय महागिरि के पौत्र अश्वमित्र को भ्रान्ति हो गई। पूर्व की वाचना करते हुए उसका मन बदला और गुरु

द्वारा नये दृष्टि समझाने पर भी समाधान नही हुआ। तव गुरु ने संघ के समक्ष इस वात को प्रकट किया, और वह निन्हव समझा जाने लगा ॥३४॥

॥लावणी॥

कंपिलपुर में विचरत जब वह आया,
सुंकपाल ने पकड़ मारना च्हाया।
जाना हमने तुम श्रावक हो प्रभु के,
वोले रक्षक साधु थे वे विभु के।
संबोधित हो बने सुदृष्टीधारी ॥ लेकर० ॥३५॥

अर्थ.—अश्वमित्र आदि मुनि एक समय विचरते हुए कपिलपुर पहुँचे। वहा का सुंकपाल-चुंगीवाला, जिन शासन का भक्त था। अश्वमित्र के श्रद्धा-परिवर्तन का हाल जानकर उसने सोचा, इन मुनियों को किसी प्रकार से वोध देकर मार्गारूढ करना चाहिये। उसने एक युक्ति निकाली और सेवक पुरुषो को आदेश देकर साधुओ को हस्तिकटक-मर्दन से शिक्षा देना चाहा। साधु यह देख कर वोले,—"भाई! हम तो तुमको श्रावक समझते थे। तुम साधुओ के साथ ऐसा व्यवहार कैसे करते हो?" रक्षक वोला—'महाराज! पता नही, तुम लोग साधु के वेश मे कोई गुप्तचर हो। रक्षक की वात से साधु समझ गये, उनको अपनी भूल मालूम हुई और वे पुनः जिन-मार्ग पर स्थिर हो गये ॥३५॥

॥लावणी॥

पौत्र दूसरा गंग नाम से जानो,
आर्य महागिरि दादागुरु पहचानो।
उलुकातीर नगर किया वर्षा वासो,
गुरुदर्शन को गये मार्ग वहि मासो।
नीचे शीतल शिर पै ताप करारी ॥ लेकर० ॥३६॥

अर्थः—महागिरि का दूसरा पौत्र-शिष्य गग मुनि था। आर्य महागिरि उसके दादा गुरु थे। गुरु शिष्य ने उलूकातीर नगर मे चातुर्मास किया था। नगर और गॉव के वीच नदी थी। कार्तिकी चातुर्मासी पर क्षमापना

करने शिष्य गुरु के पास गया। उस समय नदी मे से जाने के कारण उसको नीचे से ठंडा और ऊपर से उष्णताप का वेदन हो रहा था ॥३६॥

॥लावणी॥

एक समय दो वेदन देख विचारा,
क्रिया दोय नहिं बाधक मन में धारा।
समय सूक्ष्म उपयोग भेद किम जाने,
पद्मपत्र शतदल भेदन सम जाने।
ज्ञानी के वच श्रद्धा लो मन धारी ॥ लेकर० ॥३६॥

अर्थः—गंग मुनि को एक समय मे दो वेदना देख कर मन से विचार हुआ कि एक समय मे दो वेदन नही होने का सिद्धान्त ठीक नही। मुनि ने समय की सूक्ष्मता का विचार नही किया। कमल के सहस्र पत्र एक साथ भेदन करने पर भी वस्तुतः एक के बाद एक कमल का भेदन भिन्न-भिन्न समय मे होता है। ऐसे उष्ण वेदना के समय शीत का और शीत के समय उष्ण वेदना का उपयोग नही होता। एक समय में एक ही उपयोग होता है, दो नही। क्योकि समय सूक्ष्म है। अतः ज्ञानी के वचन पर श्रद्धा करना उचित है ॥३७॥

॥लावणी॥

गुरु वचनो से समझ नही जब आई,
संघ बाह्य की तब आज्ञा सुनवाई।
राजगृही में नागमणी तट आये,
मणीनाग ने अनुशासित करवाये।
गुरु सेवा में पहुंच आत्मा तारी ॥ लेकर० ॥३८॥

अर्थः—गंग मुनि जब गुरु के समझाने पर भी समझ नही पाया, तब उसे संघ बाह्य घोषित कर दिया। किसी दिन घूमते हुए मुनि राजगृही आये और मणिनाग यक्ष के देवालय पर ठहरे। मणिनाग यक्ष सम्यक् दृष्टि था। अतः उसने मुनि को समझाया और बतलाया कि मैने भी प्रभु से ऐसा ही सुना है अतः जाओ गुरुदेव से क्षमा मांग कर पुनः जिन वचनानुसार स्थिर मन से संयम का पालन करते रहो ॥३८॥

||लावणी||

शासन बल से निन्हव की न चली तब,
भूल मानकर सुपथ लगे वे भी तब ।
आर्य सुहस्ती हुए प्रभावक मुनिवर,
सप्रति ने बनवाये कहते जिन घर ।
मिले न कोई बात पुष्टि करनारी ।। लेकर० ।।३९।।

अर्थः—जब संघ बल से निन्हव को नही चल पाई तब भूल स्वीकार कर उसने फिर सत्यमार्ग स्वीकार किया । महागिरि के समान आर्य सुहस्ती भी बड़े प्रभावक मुनि हुए, उनसे प्रतिबोध पाकर संप्रति राजा ने जिन धर्म की बडी सेवा की । कहा जाता है कि उसने पृथ्वी को जिन मंदिर से मंडित कर दिया । परन्तु इसकी पुष्टि मे कोई सबल प्रमाण प्राप्त नही होता, न सम्प्रति द्वारा निर्मापित कोई मूर्ति ही प्राप्त होती है ।।३९।।

महागिरी और सुहस्ति के वंश और सद्गुणों का परिचय

||लावणी||

महागिरि का वंश साधना प्रेमी,
कौटिक गण में था विद्याबल नामी ।
विद्याबल से भिक्षा नहीं मिलाई,
संयमप्रिय कई अंत समाधि लगाई ।
दुर्बल मन कई शिथिल वृत्ति ली धारी ।।लेकर०।।४०।।

अर्थ—महागिरि का वश अधिक साधना-प्रेमी था । उनके प्रमुख शिप्य बहुल बलिस्सह आदि हुए । दूसरी ओर सुहस्ती के शिप्य सुस्थित से कौटिक गण चला । इसमे विद्याबल की विशिष्टता पाई जाती है । दुर्भिक्ष की बाधा में भी सयमप्रिय सतो ने विद्याबल से भिक्षा प्राप्त करना नही चाहा, किन्तु बहुत से आत्मार्थी मुनियो ने तो शुद्ध भिक्षा के अभाव मे अनशन पूर्वक जीवन विसर्जन कर दिया और कई मंद मनोबल वालो ने शिथिल वृत्ति स्वीकार कर ली ।।४०।।

|| लावणी ||

गिरि ने पड़िमा साधन करना ठान

सुहस्ती का गणनायक पद पाना ।
पाटलिपुर मे दोनो मुनि चल आये,
वसुभूति के घर उपदेश सुनाये ।
भिक्षा हित गिरि भी आये उस वारी ।। लेकर० ।।४१।।

अर्थः—महागिरि की यह विशेषता कही जा चुकी है कि उन्होंने कठोर आचार की साधना के लिये एकलविहार पड़िमा का साधन चालू किया और गण व्यवस्था का काम आर्य सुहस्ती को संभलाया । किसी समय दोनो विचरते हुए पाटलिपुर आ गये । एक बार आर्य सुहस्ती वसुभूति सेठ के यहा उसके परिवार को प्रतिबोध देने उपदेश कर रहे थे, उसी समय भिक्षा हेतु महागिरि भी वहां आ पहुँचे ।।४१।।

।। लावणी ।।

सुहस्ती ने विनयभाव दरसाया,
त्याज्य अन्न लेते परिचय बतलाया ।
जगी सेठ मन भक्ति स्वजन जतलाये,
त्याज्य बताकर देना भाव सवाये ।
स्वजनों ने भी ऐसी की तय्यारी ।। लेकर० ।।४२।।

अर्थः– आर्य सुहस्ती ने आर्य महागिरि को आते देख कर विनय से आदर दिया और सेठ के पूछने पर महागिरि के तपस्वी जीवन का परिचय देते हुए कहा कि ये गृहस्थ के यहां डाले जाने वाले असार आहार को ही लेते है । बडे तपस्वी है । यह सुन कर सेठ के मन मे भक्ति जगी और उसने स्वजन वर्ग को जतलाया कि आर्य के आने पर तुम त्याज्य बता कर उत्तम भोजन प्रेम से देना । सेठ के कथनानुसार स्वजनो ने भी ऐसी ही तैयारी की ।।४२।।

।। लावणी ।।

तीस वर्ष गृहवास संयमी सित्तर,
चालीस वत्सर बाद तीस पदवीधर ।
पूर्ण शतायु होकर स्वर्ग सिधाये,

कठिन साधना से शासन शोभाये ।
गिरि सम अविचल सहे परीषह भारी ।।लेकर०।।४३।।

अर्थः—आर्य महागिरि ३० वर्ष घर मे रहे और ७० वर्ष तक संयम साधन किया । जिसमे ४० वर्ष की सामान्य साधना के पश्चात् आचार्य बन कर ३० वर्ष तक शासन का संचालन किया । कुल १०० वर्ष की आयु भोग कर स्वर्ग वासी हुए । कठिन तप की साधना करके आपने जिन शासन की शोभा बढाई । परिषहो के सहने मे आप मेरुगिरि सम अचल रहे । सचमुच आपका महागिरि नाम सार्थक रहा था ।।४३।।

।। लावणी ।।

संयम में शैथिल्य तभी घुस आया,
शाखाओं का उदय संघ में छाया ।
उत्तर बलिसह गण की शाखा जानो,
महागिरि के स्थविर आठ पहिचानो ।
सुहस्ती से बड़ी साख विस्तारी ।। लेकर० ।।४४।।

अर्थः—आर्य सुहस्ती के समय मे ही सयमाचार मे शिथिलता का प्रवेश होने लगा और यही से शाखाओ का संघ मे उदय हुआ । महागिरि के शिष्य बलिसह से उत्तर बलिसह शाखा प्रकट हुई और सुस्थित से कौटिक गच्छ प्रकट हुआ । महागिरि के आठ शिष्य स्थविर कहलाये । इसी तरह सुहस्ती से सुस्थित सुप्रतिबुद्ध आदि रूप मे बडी शाखा चली, जो अधिक प्रसार पाई ।।४४।।

।। लावणी ।।

स्वाति और श्यामार्य हुए व्रतधारी,
त्रिशत छिहत्तर हुए स्वर्ग अधिकारी ।
बहुल बलिस्सह गिरि के पटधर जानो,
सुस्थित से कौटिकगण उदय पिछानो ।
आठ पाट निर्ग्रंथ नाम था जहारी ।।लेकर०।।४५।।

अर्थः—आर्य बलिस्सह के स्वाति मुनि और स्वाति के श्यामाचार्य हुए । वीर संवत् ३७६ में स्वाति के शिष्य श्यामाचार्य का स्वर्गवास हुआ ।

ये प्रथम कालकाचार्य थे। महागिरि के प्रथम पट्टधर वहुल-वलिस्सह हुए। आर्य सुहस्ती के शिष्य सुस्थित सूरि से कौटिक गण प्रकट हुआ। कहा जाता है कि सूरि मत्र का क्रोड़ वार जाप करने से इनके गच्छ को कौटिक कहा जाने लगा। सुधर्मा से इस प्रकार आठ पाट तक निर्ग्रंथ गच्छ चलता रहा ॥४५॥

दूसरे कालकाचार्य:—

॥ लावणी ॥

गर्दभिल्ल उच्छेद कालकाचारी,
वर्ष चार सौ त्रेपन में बलधारी।
सरस्वती भगिनी को मुक्त कराया,
अनहोनी हुई बात हृदय थर्राया।
सब के मन मे मची उदासी भारी ॥ लेकर० ॥४६॥

अर्थ – वीर सवत् ४५३ मे गर्दभिल्ल को युद्ध मे हराने वाले दूसरे कालकाचार्य हुए। उन्होने शको को साथ लेकर गर्दभिल्ल से लड़ाई की और अपनी सरस्वती वहिन, जो साध्वी थी, को राजा गर्दभिल्ल के चंगुल से मुक्त कराने के लिए पूरा जोर लगाया। एक अहिंसक मुनि का साध्वी को वचाने के लिये हिंसक युद्ध मे कूद पड़ना अनहोनी वात थी। साध्वी के हरण से सव के मन में उदासी छा गई थी ॥४५॥
संक्षिप्त घटना इस प्रकार है:–

॥लावणी॥

गर्दभिल्ल नृप सरस्वती पर मोहा,
किया हरण उसने, किया शासन द्रोहा।
संघ विनय से भी उसने नहीं माना,
कालक के मन हुआ दर्द अति छाना।
करा सती को मुक्त शुद्धि कर डारी ॥लेकर०॥४७॥

अर्थ:—राजा गर्दभिल्ल आचार्य कालक की भगिनी सरस्वती नामक साध्वी के रूप पर मुग्ध हो गया और वह उस साध्वी का हरण कर अपने

अंत.पुर में ले आया। इस प्रकार उसने जिन शासन के प्रति बड़ा द्रोह किया। सघ के विनयपूर्वक निवेदन करने पर भी उसने साध्वी को नही छोड़ा। तव आर्य कालक को बडा दुख हुआ और उन्होंने शको की सहायता से गर्दभिल्ल को युद्ध मे हराकर साध्वी को मुक्त कराया, वाद मे उन्होंने प्रायश्चित्त से अपनी शुद्धि की ॥४७॥

(तपा प० गाथा ४ की टि०)

॥लावणी॥

आर्य श्याम के पटधर शंडिल राजे,
अष्टोत्तर शत की शुभ वय में छाजे।
चार शती चवदह् में गण दीपाया,
मुनि समुद्र को अपने पद बिठलाया।
चतुष्पंचाशत् में हुए सुर अधिकारी ॥लेकर०॥४८॥

अर्थ :—आर्य श्याम के पट्टधर शाडिल्य आचार्य हुए। इनकी शुभ आयु १०८ वर्ष की थी। वीर संवत् ४१४ मे शासन को दिपा कर आपने आर्य समुद्र को अपने पट्ट पर विठाया। ४५४ मे आप स्वर्ग के अधिकारी हो गये ॥४८॥

॥रा०॥

समुद्र के पट्ट मंगू देखो, ज्ञान क्रिया के धारी हैं।
श्रुत सागर के पार करण को, प्रतिभा बल विस्तारी हैं ॥७॥

अर्थ·—आर्य समुद्र के पट्ट पर आचार्य मगू हुए। ये ज्ञान क्रिया के धारक थे। श्रुत समुद्र को पार करने के लिए उन्होंने अपने प्रतिभा वल को खूब वढाया था ॥७॥

॥लावणी॥

आर्य मगू के पट्ट गणी नंदिल हैं,
नवपूर्वी रक्षित के सत सबल हैं।
वैरोट्या के प्रतिबोधक कहलाये,
ज्ञान चरण में उद्यत कह बतलाये।
विक्रम सम्वत् दो का है काल विचारी ॥लेकर०॥४९॥

अर्थः—आर्य मंगू के शिष्य नंदिल गणी हुए। ये आर्य रक्षित की परम्परा के ९ पूर्वों के ज्ञाता थे। आप वैरोट्या देवी के प्रतिबोधक कहलाये और ज्ञान चरण की आराधना मे बडे कुशल समझे गये। आपका समय विक्रम सवत् दो का है ॥४९॥

॥लावणी॥

आर्य नागहस्ती नंदिल के पटधर,
शत पर सोलह परम आयु के श्रुतधर।
वाचक वंश की उज्ज्वल साख पुराई,
पांच पूर्व का रहा ज्ञान कहे भाई।
छ सौ निव्वासी में सुर हुए अवतारी ॥लेकर०॥५०॥

अर्थः—आर्य नदिल के पट्टधर आर्य नागहस्ती हुए। आप बड़े श्रुतधर थे। आपकी परम आयु ११६ वर्ष की थी। आपने वाचक वंश की विमल प्रतिष्ठा मे चार चाद लगाये। आपके समय तक पाँच पूर्वों का ज्ञान विद्यमान था। कहा जाता है कि वीर संवत् ६८९ में आप स्वर्गवासी हुए ॥५०॥

॥लावणी॥

आर्य रेवती नागहस्ती के पटधर,
पूर्ण आयु शत पर नव अति सुखकर।
वीर काल अष्टम शत वर्ष अड़तालो,
वाचकवंश की शोभा को उजवालो।
हुए अठारह पाट विमल यशधारी ॥लेकर०॥५१॥

अर्थः—आर्य नागहस्ती के पट्ट पर आर्य रेवती हुए। आपकी आयु १०९ वर्ष की थी। वीर सवत् ७४८ मे वाचक वश की शोभा वढा कर आप स्वर्ग पधारे। इस प्रकार विमल यश वाले आप अठारहवे आचार्य थे ॥५१॥

॥लावणी॥

आर्य सिंह रेवती के पट्ट विराजे,
नवमी सदी का प्रथम चरण शुभ छाजे।

कालिक श्रुत के धारक सूरि प्रधानो,
सिंह आर्य के पट स्कदिल गुणवानो।
हुए पाट ये बीस पराक्रमधारी ॥५२॥

अर्थः—आचार्य रेवती के पाट पर आर्य सिह विराजे। आप कालिक श्रुत के विशिष्ट ज्ञाता १६ वे आचार्य माने गये है। आपका सत्ताकाल वीर निर्वाण की नवमी सदी का आरभ काल है। आर्य सिह के पट्टधर आर्य स्कंदिल हुए। ये महागिरि की परम्परा मे २० वे आचार्य थे ॥५२॥

॥लावणी॥

स्कदिल पीछे हेमवान पद छाजे,
श्रुतबल से अति तेज सघ में गाजे।
विचरण भूमडल में विस्तृत जिनका,
नागार्जुन से सबल पट्टधर उनका।
कठिन समय में शासन रक्षाधारी ॥लेकर०॥५३॥

अर्थ—आर्य स्कंदिल के पीछे २१ वे आचार्य हिमवान् हुए। आप विशिष्ट श्रुतधर हो कर संघ मे तपस्तेज से दीपते रहे। आपका विहार क्षेत्र विस्तृत रहा। आपके पीछे २२ वे आचार्य नागार्जुन भी वडे समर्थ सत हो चुके हैं, जिन्होने कठिन समय मे जिन शासन की रक्षा की ॥५३॥

॥लावणी॥

जन्म सात सौ तेराणू बतलाया,
दीक्षा लेकर सयम मे मन लाया।
युग प्रधान छव्वीस आठ में राजे,
सौ पर ग्यारह वय में स्वर्ग विराजे।
वाचक पद से विमल कीर्ति विस्तारी ॥लेकर०॥५४॥

अर्थः—इनका जन्म वीर सम्वत् सात सौ तेराणू कहा गया है। इन्होंने दीक्षा ले कर सयम मे मन लगाया। वीर संवत् आठ सौ छव्वीस मे ये युग प्रधान आचार्य वने और पूर्ण आयु १११ वर्ष की भोग कर स्वर्ग सिधारे। इन्होने वाचक पद पर रह कर अच्छी कीर्ति कमाई ॥५४॥

॥लावणी॥

भूतदिन्न नागार्जुन पीछे दीपे,
मार्दव मन शोभा में कांचन जोपे।
सयम विधि के ज्ञाता कह गुण गाये,
वर्ष एक कम बीस शतायु पाये।
नाइल कुल की प्रीति बढ़ाई भारी ॥लेकर०॥५५॥

अर्थः—नागार्जुन के पीछे आचार्य भूतदिन्न हुए। मार्दव भाव से ये काचन की तरह चमक रहे थे। देव वाचक ने संयम विधि के ज्ञाता कह कर इनकी स्तुति की है। इन्होने अपनी योग्यता से नाइल कुल का बहुत ही प्रेम सपादन किया। इनकी पूर्ण आयु ११९ वर्ष की वतलाई गई है ॥५५॥

॥लावणी॥

भूतदिन्न के पट लौहित्य गणी राजे,
सूत्र अर्थ के विशिष्ट ज्ञाता छाजे।
वीरकाल नव सौ चालीस की वेला,
अमरलोक वासी हुए छोड़ झमेला।
दूष्य गणी को किया पट्ट अधिकारी ॥लेकर०॥५६॥

अर्थ—भूतदिन्न के वाद आर्य लोहित्य गणी पद पर विराजे। ये सूत्र अर्थ के विशिष्ट ज्ञाता थे। इन्होने दूष्य गणी को उत्तराधिकारी वना कर वीर सवत् ९४० में स्वर्ग प्राप्त किया ॥५६॥

॥लावणी॥

दूष्यगणी के पद देवर्धि विराजे,
पूर्व ज्ञान के धारक महिमा छाजे।
स्मृतिवल की लखि हानि गणी ने सोचा,
सुकाल मे मुनिमंडल से आलोचा।
श्रुतवाचन की मन मे बात विचारी ॥लेकर०॥५७॥

अर्थः—दूष्य गणी के वाद २७ वे पट्ट पर आचार्य देवर्धि होते है।

ये एक पूर्व के ज्ञाता थे । स्मृति बल की क्षीणता देख कर इन्होंने सोचा कि शास्त्रों का रक्षण किस प्रकार किया जाये । सुकाल होने पर मुनिमंडल से परामर्श कर यह तय किया कि प्रमुख संतों को बुलाकर एक श्रुतपरिषद् भराई जाय और उसमें वाचना द्वारा अंगादि सूत्रों का संकलन व रक्षण किया जाय ।।५७।।

वाचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

।।लावणी।।

प्रथम वाचना भद्रबाहु युग में थी,
द्वितीय सुस्थित ने कलिंग मे की थी।
बलिस्सह आदि श्रमण श्रमणी भी आये,
अंग और दशपूर्व पाठ स्थिर थाये।
स्थविरावली में कही बात यह सारी ।।लेकर०।।५८।।

अर्थ—भद्र बाहु के समय मे प्रथम वाचना पाटलिपुत्र मे हुई, और दूसरी सुस्थित के समय कलिंग मे की गई। इसमे वलिस्सह आदि प्रमुख संत और साध्वियां भी उपस्थित थे । हिमवत स्थविरावली के अनुसार इसमें ११ अंग और दस पूर्वो के पाठ स्थिर किये गये ।।५८।।

।।लावणी।।

वज्रसेन के समय तीसरी जानो,
रक्षित का नेतृत्व मुख्य पहिचानो।
दशपुर में शतपांच वराणू (५९२) कहते,
अनुयोगों का पृथक् करण करवाते।
श्रमणवर्ग का मेधाबल अवधारी ।।लेकर०।।५९।।

अर्थ—तीसरी वाचना आचार्य वज्रसेन के समय दशपुर नगर मे हुई, जो वीर संवत् ५९२ मे आर्य रक्षित के नेतृत्व मे सम्पन्न हुई थी। इसमें अनुयोगो का पृथक् करण किया गया । अनुभवी आचार्यों ने देखा कि आज श्रमणवर्ग संयुक्त अनुयोग को धारण नही कर सकेगा, अतः उन्होंने पृथक् अनुयोग के रूप मे शास्त्रो का वर्गीकरण कर डाला ।।५९।।

अर्थः—वीर निर्वाण ९८० के समय उन्होने फिर वल्लभी मे श्रमण समुदाय को एकत्र किया और दोनो वाचनाओ के पाठो को ध्यान मे लेकर आगमो का लेखन करवाया। उनके सत्प्रयास का ही फल है कि सघ की श्रुतवाड़ी आज हरी भरी है और हम शास्त्र भंडार को सुरक्षित पा रहे है ।।६४।।

।।लावणी।।

परिस्थिति मे साधारण नर ढलते,
साहसयुत नर युग का रंग बदलते।
वीर और सत्पुरुष वही कहलावे,
श्रमबल से बाधा को दूर हटावे।
श्रुतलेखन कर गणि ने नाव उबारी ।।लेकर०।।६५।।

अर्थः—साधारण जन मन का स्वभाव परिस्थिति के अनुसार ढल जाता है। केवल प्रतिभाशाली साहसी पुरुप ही समय का रग अपने अनुकूल बदल सकते है। वास्तव मे सत्पुरुष और वीर वही कहलाता है, जो श्रमबल से बाधा को हटा कर आगे बढता है। देवर्धि गणी ने आगम-लेखन कर शासन की डूबती हुई नाव को उबार लिया ।।६५।।

।।रास०।।

आर्य सुहस्ती वज्र बीच में,
सात मुख्य **आचार्य हुए।**
(१) गुण सुन्दर, (२) कालक, (३) स्कंदिल, औ
(४) मित्ररेवती, (५) धर्म गये ।।८।।

(६) भद्रगुप्त (७) श्री गुप्त नाम के प्रतिभाशाली सत हुए।
रक्षित भद्रगुप्त निर्यामक, श्रुतरक्षण में दक्ष हुए ।।९।।

आर्य खपुट और वृद्धवादी, नृप विक्रम के समकाल हुए।
सिद्धसेन से ज्योतिर्धर ने, भूप चरण मे झुका दिये ।।१०।।

अर्थ—आर्य सुहस्ती और वज्रस्वामी के बीच सात प्रतिभाशाली प्रमुख आचार्य हुए, जो इस प्रकार हैं.

(१) गुण सुन्दर,
(२) आर्य कालक,
(३) आर्य स्कंदिल,
(४) आर्य रेवती मित्र,
(५) आर्य धर्म,
(६) भद्रगुप्त और
(७) श्रीगुप्त

उनमे आर्य रक्षित भद्रगुप्त आचार्य के निर्यामक और श्रुतरक्षण मे बहुत ही दक्ष हो चुके है ॥८॥९॥ फिर राजा विक्रमादित्य के समय मे आर्य खपुट और वृद्धवादी नाम के आचार्य भी हुए हैं। सिद्धसेन जैसे ज्योतिर्धर आचार्य भी इसी समय हुए, जिन्होने वडे वड़े भूपतियो को अपने चरणों मे झुका कर जिन शासन की शोभा वढाई ॥१०॥

आचार्य सिद्धसेन का परिचय इस प्रकार है :—

॥लावणी॥

विद्याबल से सिद्धसेन अकड़ाया,
वृद्धवादी से चर्चा करने आया।
मिले मार्ग गुरु चर्चा करण उमाया,
कहे भिक्षु मैं वाद करण को आया।
हारे सो ही शिष्य वृत्ति ले धारी॥ लोकर० ॥६६॥

अर्थ —सिद्धसेन को अपने विद्यावल का वडा अभिमान था। उसने वृद्धवादी की प्रशंसा सुनी तो उनके साथ शास्त्रचर्चा करने को निकल पड़ा। उसको रास्ते में ही वृद्धवादी मिल गये।

मिलते ही उसने कहा, "महाराज! मैं आपसे वाद करने आया हूँ। मेरी प्रतिज्ञा है कि हम दोनों में जो हारेगा वही जीतने वाले का शिष्यत्व स्वीकार करेगा" ॥६६॥

॥लावणी॥

गोपालों के वीच वाद किया जहारी,
वृद्धवादी माधुर्य गिरा उच्चारी।

॥लावणी॥

मथुरा और वल्लभी में चौथी जानो,
स्कंदिल नागार्जुन मुखिया पहचानो।
वीर काल सौ आठ तीस बतलाया,
उत्तर दक्षिण मुनिगण के हित लाया।
पाठ भेद देवर्धि लिये सवारी ॥लेकर०॥६०॥

अर्थ —चौथी वाचना वीर निर्वाण सम्वत् ८३० मे आर्य नागार्जुन और स्कदिल के नेतृत्व मे हुई। जिसमे उत्तर के श्रमण मथुरा मे और दक्षिण के वल्लभी मे क्रमश: नागार्जुन और स्कदिल के नेतृत्व मे एकत्र हुए। आचार्य देवर्धि ने दोनो वाचनाओ के पाठ भेदो को उचित रूप से मिला कर एक रूपता लाने का प्रयत्न किया ॥६०॥

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

॥लावणी॥

मचा युद्ध अरु सतसघर्षण जग मे,
हूण गुप्त का समर मध्य भारत मे।
भिक्षा दुर्लभ त्यागी रह गये विरले,
श्रुतसंरक्षण करके युग को बदले।
स्कदिल ने मथुरा मे की तय्यारी ॥लेकर०॥६१॥

अर्थ —वीर निर्वाण की नवमी सदी मे हूण और गुप्त वश के राजाओ का मध्यभारत मे युद्ध चला और साप्रदायिक संघर्ष से भिक्षा दुर्लभ हो चली। उस समय ऐसे शक्तिशाली श्रमण अल्प सख्या मे थे जो शास्त्रो का रक्षण कर युग को बदल सके। अत: आचार्य स्कदिल ने मथुरा मे श्रुत संरक्षण के लिये आगम वाचना की ॥६१॥

॥लावणी॥

नागार्जुन ने वल्लभी सभा भराई,
दक्षिण के मुनि हुए इकट्ठे आई।
दोनों मे कुछ पाठ भेद रह पाये,

मिला न ऐसा योग मर्म समझाये।
देर्वाध ने गुणगाथा विस्तारी ॥लेकर०॥६२॥

अर्थः—जो मुनि दक्षिण मे विचर रहे थे, उनके लिये नागार्जुन के नेतृत्व मे वल्लभी में सभा की गई, इन दोनो वाचनाओ में कुछ पाठ भेद रह गये थे, जो दोनो प्रमुख मुनियो के मिलने से ही हल होते। परन्तु वैसा सयोग नही मिल सका। तव आचार्य देर्वाध ने पाठ भेदो की सकलना कर यथा मति मुख्य एवं गौण रूप से पाठो की स्थापना की जो, आज भी विद्यमान है ॥६२॥

॥लावणी॥

श्लेष्महरण को सुंठी इक दिन लाये,
भूल न उसका प्रत्यर्पण कर पाये।
क्रिया करत गिरने से मन में आई,
मंदबुद्धि कैसे श्रुत रहे टिकाई।
कर विचार आगम लेखन की धारी ॥लेकर०॥६३॥

अर्थः—आचार्य देर्वाध अपनी कफ-व्याधि के उपशम हेतु एक दिन सूंठ लाये, उसको समयान्तर मे उपयोग कर शेष को पीछी लौटाने के विचार से कान में रख छोड़ा था। पर दिन भर स्मृति नही आई। सायंकाल क्रिया करते समय सूंठ के यकायक कान से निकल कर नीचे गिर पडने पर ध्यान आया तो आचार्य को विचार हुआ कि इतनी सी वात भी स्मृति से निकल गई तो आगे के मंद मेधा-वल वाले शिष्यो मे श्रुत कैसे टिकेगा ? ऐसा सोचकर आगम-लेखन का निश्चय किया ॥६३॥

॥लावणी॥

वीरकाल नवसौ अस्सी जब आया,
देव ऋद्धि ने फिर समुदाय मिलाया।
उभय वाचना के पाठों को लेकर,
आगमलेखन करवाया शुभमतिधर।
आज उसी से हरी सघ की बाडी ॥लेकर०॥६४॥

मध्यस्थों ने खुश हो विजय सुनाई,
सिद्धसेन ने भी रक्खी सच्चाई।
गुरुचरणों में लिये महाव्रत धारी ।। लेकर० ।।६७।।

अर्थः—सिद्धसेन ने ग्वालो को मध्यस्थ मान कर वृद्धवादी से वही वाद प्रारम्भ कर दिया। वृद्धवादी ने मधुर सगीत मय लोक भाषा मे उत्तर दिया और सिद्धसेन संस्कृत मे अपनी विद्वत्ता दिखाता रहा। मध्यस्थों ने वृद्धवादी की वात सुन समझ कर खुशी से उनकी विजय घोपित कर दी। सिद्धसेन ने भी अपने वचन को निभाने के लिये उनका शिष्यत्व स्वीकार किया, एव गुरु द्वारा प्रदत्त पंच महाव्रत धारण करके अपने को गुरु चरणों मे अर्पित कर दिया ।।६७।।

॥लावणी॥

विचरत दोनो उज्जयनी मे आये,
देख प्रशंसा भूधर मन चकराये।
करण परीक्षा मन में वन्दन कीना,
सिद्धसेन ने धर्म वृद्धि कह दीना।
भूपति के मन में जगी भावना भारी ।। लेकर० ।।६८।।

अर्थ—सिद्धसेन के शिष्य वन जाने पर दोनो गुरु शिष्य विचरते हुए उज्जयनी नगरी मे आये। वहाँ पर सिद्धसेन की प्रशसा सुनकर राजा विक्रमादित्य का मन उनकी ओर आकर्पित हुआ और मुनि को देखकर राजा ने परीक्षा हेतु उनको मन मे ही अभिवादन किया। सिद्धसेन ने उत्तर मे हाथ उठाकर विक्रम को "धर्मवृद्धि" कह दिया। इससे राजा विक्रम के मन मे उनके प्रति श्रद्धा जगी ।।।६८।।

॥लावणी॥

विक्रम ने उपहार भेट दिया उनको,
हमें नही, दो ऋणपीड़ित पुरजन को।
जिनवचनों से भूपति को समझाया,
विचरत मुनिवर चित्रकूट में आया।
विक्रम ने उपकार किया जग जहारी ।। लेकर० ।।६९।।

अर्थ.—विक्रम राजा ने प्रसन्न हो कर सिद्धसेन को कुछ सुवर्णादि भेट किये। परन्तु सिद्धसेन ने "किसी ऋणपीडित नागरिक को दिया जाय, जो इसका अर्थी हो" यह कह कर उसे टाल दिया। उन्होने विक्रम को जिन मार्ग समझाया और फिर वहाँ से चल कर चित्रकूट चित्तौड़ पहुचे। सिद्धसेन से प्रतिवुद्ध हो विक्रम ने प्रजाजनो का जो उपकार किया वह प्रसिद्ध है।।६९।।

।।लावणी।।

विद्या ले मुनि कूर्मापुर चल आये,
देवपाल नृप का रक्षण करवाये।
सिद्धसेन मुनि 'दिवाकर' पद शोभावे,
भूपति भी नितप्रति दर्शन को जावे।
राजमान्य हो, रहे वहीं प्रियकारी ।। लेकर० ।।७०।।

अर्थः—चित्रकूट के जयस्तम्भ को देखकर सिद्धसेन को आश्चर्य हुआ। स्तभ को सू घ सू घ कर उन्होने परीक्षण किया और एक लेप द्वारा स्तंभ का मुख उघाड़ कर भीतर से एक पुस्तक प्राप्त की। उसमे सुवर्ण सिद्धि और सरसवी नाम की दो विद्याएँ थी। विद्या ग्रहण कर मुनि कूर्मापुर आये, वहा का राजा देवपाल, जिसको विरोधी राजा ने घेर लिया था, अपनी असमर्थता से चिन्तित हो सिद्धसेन के पास आया। सिद्धसेन ने दोनो विद्याओ से अतुल-धन और सैन्य उत्पन्न कर उसकी सहायता की। इससे राजा देवपाल ने प्रसन्न हो उन्हे 'दिवाकर' पद से अलकृत किया और प्रतिदिन आचार्य के दर्शन के लिये उत्कठित रहने लगा। फलस्वरूप सिद्धसेन राजमान्य होकर वही रहने लगे ।।७०।।

।। लावणी ।।

सुना हाल तव खेद हुआ गुरु मन मे,
चले एक दिन उठा पालकी जन मे।
सिद्धसेन गति विषम देख बतलावे,
बाधति सम नही पीड़ा खंध कहावे।
जान गुरु को चरण नमे बलिहारी ।। लेकर० ।।७१।।

अर्थ—गुरु वृद्धवादी ने जब यह बात सुनी तो उनके मन को बड़ा खेद हुआ। वे सिद्धसेन को बोध देने वहाँ आये और गुप्त रूप से पालकी उठाने वाले अनुचरो मे मिल गये। एक दिन जब वे पालकी उठाकर चले जा रहे थे तो सिद्धसेन ने विषम गति देखकर पूछा—"बाधति स्कंध एष ते" अर्थात् तुम्हारा कधा दुखता होगा ?

वृद्धवादी ने उत्तर दिया—"तथा न बाधते देव ! यथा बाधति बाधते" अर्थात् हे राजन्, जैसा 'बाधति' का अशुद्ध उच्चारण पीड़ा देता है वैसा स्कध दर्द नही करता।"

सिद्धसेन समझ गये कि इस प्रकार का उत्तर तो आचार्य गुरु वृद्धवादी का ही होना चाहिये। उन्होने नीचे उतर कर गुरु को वदन किया और अपनी भूल के लिए क्षमा याचना की ॥७१॥

॥दोहा॥

सिद्धसेन नवकार मंत्र को, संस्कृत में कर डाला है।
वृद्धवादी ने दोष बताकर, दिया प्रायश्चित्त काला है ॥११॥
विनयशील मुनि ने गुरु आज्ञा, भक्तिसहित सिरधारी है।
भूप बोध दे द्वादश वत्सर, रहे बाह्य व्रतधारी है ॥१२॥

अर्थ—सिद्धसेन ने विद्वानो मे सस्कृत का महत्व देखकर एक दिन नवकार मंत्र को सस्कृत मे बदल दिया। वृद्धवादी ने जब जाना तो सूत्रकारो की इसमें अवहेलना बताकर उन्हे दशवें पारचित प्रायश्चित्त का दण्ड बतलाया। विनयशील होने के कारण सिद्धसेन ने भक्तिसहित गुरु द्वारा बतलाया गया प्रायश्चित्त स्वीकार किया और १२ वर्ष तक सघ से बाहर रह कर कई राजाओ को प्रतिबोध दिया। जो इस प्रकार है ॥११-१२॥

॥तर्ज चलत॥

गुप्त रूप से उत्कट तप आराधे,
शासन की आध्यात्मिक सेवा साधे।
भूप अठारह धर्म मार्ग में जोड़े,
निर्मल मन से कर्म बंध को तोड़े।
गुप्त रूप से फिर दीक्षा स्वीकारी ॥ लेकर० ॥७२॥

अर्थ.—बारह वर्ष तक गुप्त रह कर इन्होने उत्कृष्ट तप की साधना करते हुए शासन की आध्यात्मिक सेवा की। इस बीच १८ राजाओ को धर्म मार्ग मे लगाया। फिर निर्मल मन से प्रायश्चित्त द्वारा कर्म भार को हल्का कर गुरु चरणों मे आकर उन्होने पुनः दीक्षा स्वीकार की और संघ मे पुनः सम्मिलित हुए ॥७२॥

॥लावणी॥

धन्य भाग से संघ रहा गुणधारी,
नायक भी निष्पक्ष न्याय प्रियकारी।
शिष्य सुभागी अनुशासन में चाले,
स्वेच्छाचारी हो न चले मतवाले।
ज्ञान क्रिया को धार आत्मा तारी, ॥ लेकर० ॥७३॥

अर्थ.—उस समय का कैसा आदर्श था, संघ व्यवस्था भी आदर्श और नायक भी निष्पक्ष एव न्याय प्रेमी। शिष्य भी कैसे भाग्यशाली कि प्रेम से अनुशासन का पालन करते, स्वेच्छाचारी होकर मनमाना आचरण नही करते। सिद्धसेन ने गुरु की आज्ञानुसार ज्ञान क्रिया का सम्यक पालन करते हुए आत्मा का उद्धार किया।

आर्य रक्षित

॥दोहा॥

रक्षित का अब हाल सुनाऊँ, माता से प्रतिबुद्ध हुए।
पूर्व ज्ञान का शिक्षण लेकर, शासन के आधार हुए ॥१३॥

अर्थ —अब आर्य रक्षित का हाल सुनाता हूँ, जो माता की शिक्षा से प्रेरित होकर दश पूर्वो के ज्ञाता और शासन के आधार बने ॥१३॥

॥तर्ज चलत॥

सोम देव के पुत्र हुए एक नामी,
पाट नगर में शिक्षा ली हितकामी।
विद्या पा दशपुर में पीछे आये,
नागर जन सब उत्सव कर घर लाये।
मातृ चरण मे किया नमन शिर डारी ॥लेकर०॥७४॥

अर्थः—दशार्णपुर के पुरोहित सोमदेव के पुत्र रक्षित बड़े ही नामी हुए। उन्होंने पाटलीपुत्र मे वर्षो तक शिक्षा ग्रहण की और अनेक विद्याओं में पारंगत होकर पुन दशार्णपुर लौट आये। नगर के प्रमुख जनों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। सब को चरण वदन कर रक्षित अपनी माता के पास आये और सिर झुका कर माता का चरण स्पर्श किया ॥७४॥

॥लावणी॥

मातृ मौन से रक्षित मन अकुलावे,
मात दया कर कृपा दृष्टि बरसावे।
बोली माँ प्रिय लाल सीख क्या आया,
कला सीखने से न आत्महित पाया।
आत्मज्ञान सीखो ये इच्छा म्हारी ॥लेकर०॥७५॥

अर्थ —पुत्र के प्रति मातृवात्सल्य अनूठा होता है, फिर भी रक्षित ने चरण वदन के समय भी माता को मौन देखकर चिन्ता व्यक्त की।

उसने माता से कहा "माँ! बोलती क्यो नही हो, इस समय तो तुझे बड़ी खुशी होनी चाहिये।" माँ बोली, "वत्स! तू क्या सीख कर आया है जिससे मैं खुशी मनाऊ। इस पेट भराऊ विद्या से तो कोई कल्याण होने वाला नही है। मेरी इच्छा तो यह है कि तुम आत्मज्ञान की शिक्षा लो और अपना कल्याण करो।"॥७५॥

॥लावणी॥

पुत्र पढ़ा तूं भव-वर्द्धन की विद्या,
पाऊं मै संतोष मिला(पढ़ो)सद् विद्या।
दृष्टिवाद का ज्ञान कहाँ से पाना,
साधु चरण सेवा से ज्ञान मिलाना।
परिचय पा रक्षित ने की तैयारी ॥लेकर०॥७६॥

अर्थ—बेटा! तूने ससार भव-वर्द्धन की विद्या पढी है, इससे मुझे सतोष नही, सद् विद्या पढो तो मुझे सतोष होगा।

पुत्र ने पूछा, "मां! सद् विद्या क्या है?"

"मा का उत्तर था, दृष्टिवाद, धर्मशास्त्र।"

पुत्र ने फिर पूछा, "इसका ज्ञान कहाँ से पाऊँ ?"

"मा बोली, "निर्ग्रन्थ संतो की सेवा से यह ज्ञान मिलता है। और वैसे संत आचार्य तौसलीपुत्र अपने नगर मे ही विराजमान है।"

आचार्य तौसलीपुत्र का परिचय पाकर रक्षित वहाँ जाने को तैयार हो गया ॥७६॥

॥लावणी॥

प्रात मार्ग में मिला विप्र एक नामी,
इक्षु दंड नव भेट लिये शुभकामी।
बोला उसको कार्य प्रसंगे जावें;
माताजी को घर में भेट दिरावें।
मंगल दर्शन मुदित हुई महतारी ॥लेकर०॥७७॥

अर्थ—प्रातःकाल जव रक्षित ने प्रस्थान किया तव मार्ग मे एक ब्राह्मण उन्हे मिला,जो गन्ने के नौ डडो की भेट लेकर उनसे मिलने को आया था। रक्षित ने उसे प्रणाम कर कहा, "मै किसी कार्य से जा रहा हूँ। आप यह भेट माताजी को घर मे दे देवे।" प्रस्थान मे मंगल दर्शन हुआ, इससे मां वडी प्रसन्न हुई ॥ ७७ ॥

॥लावणी॥

जाना नव पूरव का ज्ञान मिलेगा,
खंड दशम का पुत्र प्राप्त कर लेगा।
कैसे गुरु तट जाना साथी देखे,
श्रावक ढड्ढर वंदन करता लेखे।
गणी ने आगत से पूछा अवधारी ॥लेकर०॥७८॥

अर्थ—ब्राह्मण से गन्ने की भेट लेकर मा ने विचार किया कि ये नौ गन्ने पूरे और दशवे का एक टुकडा है, अत मालूम होता है कि मेरा पुत्र नव पूर्व पूरे और दशवे पूर्व का कुछ अश प्राप्त करेगा।

आचार्य तौसलीपुत्र के उपाश्रय मे जाने के लिये रक्षित किसी साथी को देख रहा था। इतने मे एक श्रावक आया जो, उच्च स्वर मे "निस्सिही" २ कहता हुआ उपाश्रय मे प्रविष्ट हुआ और वहां आचार्य को वदन करके वैठ गया। उसको उपाश्रय मे प्रवेश करते और आचार्य को वंदन करते व उनके सन्मुख वैठते देख कर रक्षित भी उसी प्रकार वंदन कर वैठ गया। आचार्य गणी तौसली पुत्र ने रक्षित को नवागन्तुक समभकर पूछा ॥७८॥

॥लावणी॥

धर्म बोध श्रावक से मैने पाया,
दृष्टिवाद पढ़ने को शरणे आया।
साधु धर्म लेने पर ज्ञान दिलाऊं,
आज्ञा सब मंजूर ज्ञान मैं पाऊं।
परिचित भूधर स्थानान्तर सुखकारी ॥लेकर०॥७६॥

अर्थ—रक्षित ने अपना परिचय देते हुए कहा, "गुरुवर ! मैने धर्म का प्रारम्भिक वोध इस श्रावक से पाया है। मैं माता के आदेशानुसार दृष्टिवाद पढने को आपकी सेवा मे आया हूँ।"

आचार्य ने कहा, "दृष्टिवाद का ज्ञान तो मुनिव्रत लेने पर सिखाया जाता है।"

रक्षित वोला, "आपकी जो आज्ञा हो, मुझे स्वीकार है, किसी भी तरह यह ज्ञान दीजिये।"

गुरु चरणो मे दीक्षित होकर रक्षित ने आचार्य से कहा, "गुरुदेव ! यहां के राजा एवं प्रजा मेरे परिचित है इसलिये यहा से आप स्थानान्तर कर लीजिये तो अच्छा है ॥७६॥

॥लावणी॥

स्वल्प काल में अंग इग्यारह पाये,
आगे पढ़ने आर्य वज्र बतलाये।
आर्य वज्र थे पूर्व ज्ञान में नामी,

उज्जैनी में भद्रगुप्त शिवकामी।
कहै करो मम सहाय आर्य व्रतधारी ॥लेकर०॥८०॥

अर्थ—आर्य रक्षित को दीक्षित कर आचार्य तौसलिपुत्र ने स्वल्प समय में ही उसे ११ अ ग का ज्ञान सिखाया, फिर पूर्वो के ज्ञान मे आगे बढ़ने के लिये आर्य वज्र की सेवा मे भेज दिया क्योकि आर्य वज्र पूर्व ज्ञान के विशिष्ट अभ्यासी थे। इष्ट साधन को जाते हुए मार्ग मे रक्षित ने सुना कि एक अन्य आचार्य भद्र-गुप्त उज्जयनी मे अनशन करने को उद्यत हैं। आचार्य के दर्शन करने की इच्छा हुई। रक्षित उन आचार्य की सेवा मे पहुँचे। रक्षित को देखकर भद्रगुप्त आचार्य ने उनसे कहा—"तुम इस समय मेरी अन्तिम आराधना मे सहयोग करो, फिर आगे जाना" ॥८०॥

॥लावणी॥

भद्रगुप्त की सेवा की मनलाई,
काल धर्म आने पर करी विदाई।
आर्य वज्र से जो तुम ज्ञान मिलाओ,
अन्त सीख पर पृथक् स्थान ठहराओ।
आर्य वज्र ने लिया स्वप्न अवधारी ॥लेकर०॥८१॥

अर्थः—आर्य रक्षित ने भी आचार्य भद्रगुप्त की वात स्वीकार की और पूरी लगन के साथ उनकी सेवा की। जव आचार्य अनशन मे समाधि-पूर्वक आयु पूर्ण कर गये तव इन्होने आगे प्रस्थान किया। अन्तिम समय भद्रगुप्त ने यह सीख दी कि आर्य वज्र से तुम ज्ञान तो प्राप्त करना, पर उनके साथ एक स्थान पर नही ठहरना।

आर्य वज्र ने भी रात्रि मे एक स्वप्न देखा कि मेरे पात्र मे से कोई दुग्धपान कर रहा है, और उस पात्र में अव स्वल्प ही दुग्ध शेष वचा है ॥८१॥

॥लावणी॥

नव्यागत लख पूछा कहाँ से आया,
तौसलिपुत्र की सेवा से चल आया।

रक्षित तुम बाहर कैसे हो ठहरे,
भद्रगुप्त की शिक्षा से दिये डेरे।
हेतु जान कर गणि ने बात विचारी ।लेकर०॥८२॥

अर्थः—प्रात काल आर्यवज्र स्वप्न के फलाफल पर विचार कर ही रहे थे कि सहसा आर्य रक्षित आ पहुँचे। उनको देख कर आर्यवज्र ने पूछा "कहाँ से आ रहे हो ?"

रक्षित ने कहा, "आचार्य तौसलिपुत्र के पास से आ रहा हूँ।"

आर्यवज्र ने पूछा, "रक्षित ! तुम अलग उपाश्रय मे कैसे ठहरे हो ?"

रक्षित ने भद्रगुप्त की शिक्षा से अलग ठहरने की बात बतलाई, आर्यवज्र ने भी हेतु समझकर सतोष प्रकट किया ॥८२॥

॥लावणी॥

अल्पकाल में नव पूरव लिये धारी,
दशम पूर्व का चला पाठ हितकारी।
मात पिता अब हुए स्नेह में आकुल,
लघु भाई संग कहा रटे मां प्रतिपल।
आने पर हम भी ले व्रत स्वीकारी ॥लेकर०॥८३॥

अर्थ:—विनय पूर्वक अभ्यास करते हुए रक्षित ने अल्पकाल मे ही नव पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया। दशवे पूर्व का अभ्यास चल रहा था, उस समय माता ने पुत्रवियोग से आकुल होकर छोटे भाई फल्गु रक्षित को भेज कर आर्य रक्षित को संदेश कहलाया कि तुम्हारे आने पर हम भी व्रत ग्रहण करेंगे, अतः एक वार जल्दी आकर मा से मिलो ॥८३॥

॥ लावणी ॥

दीक्षित कर भाई को ज्ञान मिलाते,
जपितो में घुल पूछे गुरु बतलाते।
बिन्दु मिलाया सागर शेष रहाया,
खिन्न जान कहै वज्र ठहर कुछ भाया।
चंचलता लख फिर अनुमति दे डारी ॥ले कर०॥८४॥

अर्थ —आर्य रक्षित मुनि, भाई को वही दीक्षित कर अपना ज्ञानाभ्यास करते रहे। नवदीक्षित फल्गु रक्षित भी यह सोचकर कि विना भाई को साथ लिये मा के पास जाकर क्या कहूँगा, वही ठहरे रहे। दशवे पूर्व के जपितो (पाठो) मे घुल कर एक दिन रक्षित ने गुरु से पूछा, "भगवन्! कितना पढना शेष है?"

गुरु वोले, "शिष्य! विन्दु मिलाया है, अभी सिन्धु जितना ज्ञान मिलाना शेप है।"

रक्षित निराश हुए। उनको खिन्न देखकर आर्यवज्र ने कहा "कुछ काल ठहरो तो अच्छा", पर आर्य रक्षित अव माता के पास जाने के लिये चंचल-चित्त हो उठे। अतः गुरु ने भी अवसर देखकर माता के पास जाने की अनुमति उन्हे प्रदान कर दी ॥८४॥

॥ लावणी ॥

दशपुर जा मुनि सबको धर्म सुनाया,
माता भगिनी संयम पद अवधाया।
वृद्ध खंत भी संग उन्ही के रहता,
पर लज्जावश लिंग ग्रहण नहीं करता।
रक्षित ने दी सीख उन्हे कई बारी ॥ले कर०॥८५॥

अर्थ:—गुरु से अनुमति पाकर मुनि आर्य रक्षित दशपुर आये और सव परिजनो को धर्म सुनाकर मा एव वहन आदि को प्रव्रज्या ग्रहण कराई। वृद्ध पुरोहित भी सग रहने लगा, पर लज्जावश उसने मुनि वेष ग्रहण नही किया। आर्य रक्षित ने उनको युक्ति पूर्वक समझाया और उन्हे सही मार्ग मे स्थित करने का प्रयत्न किया ॥८५॥

॥ लावणी ॥

वस्त्र युगल छत्रादि छूट मै लेऊ,
रक्षित ने किया मान्य प्रव्रज्या देऊं।
कटि-पट करलो धार खत तब बोला,
छत्र बिना नहीं चले उसे भी खोला।
करक जनेऊ आदिक भी लिये धारी ॥ले कर०॥८६॥

अर्थः—वृद्ध पुरोहित बोला, "श्रमण साधु तो बन जाऊं पर दो वस्त्र और छत्र आदि की छूट चाहता हूँ।"

आर्य रक्षित ने कटिपट धारण करने की छूट मंजूर कर उसको प्रव्रज्या दे दी।

एक दिन वृद्ध बोला, "छत्र बिना नही चलता।"

रक्षित ने उसकी भी छूट दे डाली। कमडलु और जनेऊ यज्ञोपवीत रखने की भी छूट और ले ली ॥८६॥

॥ लावरणी ॥

मार्ग लगा कर खंत सुधारण चाहे,
बाल सिखाये छत्री नहीं सिर नांयें।
बाल कथन से छत्र त्याग करवाया,
यज्ञ सूत्र भी क्रम से दूर कराया।
मति-बल से थेवर की शंक निवारी ॥ले कर०॥८७॥

अर्थ—आर्य रक्षित ने उसे श्रमण साधु मार्ग पर लगा कर फिर सुधारना चाहा। इसके लिए उन्होंने एक युक्ति निकाली। उन्होंने इसके लिये कुछ बच्चो को तैयार किया। बच्चो ने वृद्ध को देख कर कहा, "छत्ते वाले को वदन नही करना। ये श्रमण साधु नही है।"

बालको की बात से वृद्ध ने छत्र लगाना छोड़ दिया। फिर यज्ञसूत्र भी निकाल दिया। इस प्रकार धीरे-धीरे रक्षित ने अपनी युक्ति एव मतिबल से वृद्ध की शका मिटा दी। फल स्वरूप अन्त मे वह द्रव्य-भाव रूप उभय लिग वाला जैन मुनि हो गया ॥८७॥

॥ लावरणी ॥

देत वाचना अपना ज्ञान भुलाता,
अनुप्रेक्षा बिन पूर्व शिथिल हो जाता।
मेधावी की देख दशा गुरु सोचे,
भावि प्रजा का मेधाबल आलोचे।
पृथक् किये अनुयोग महा मतिधारी ॥ले कर०॥८८॥

अर्थ.—आर्य रक्षित ने काफी समय दुर्वलिका मित्र नाम के अपने एक शिष्य को वाचना देने मे लगाया। दुर्वलिका मित्र ने कुछ दिनो वाद गुरु से कहा—"आपके वाचना देने से मेरे पहले सीखे हुए पाठ की अनुप्रेक्षा आवृत्ति वरावर नही होती जिसके विना पूर्व का ज्ञान शिथिल होता जा रहा है।"

आचार्य ने ऐसे मेधावी शिष्य की यह स्थिति देख कर विचार किया कि भावी सन्तान का मेधावल अति मद होता जा रहा है। अत· शास्त्र के अनुयोगो को मूल से पृथक् कर देना चाहिये। यह सोच समझकर अन्त मे आर्य रक्षित ने शास्त्र के ४ अनुयोगो को गूल से पृथक् कर दिया ॥८८॥

आर्य रक्षित का शास्त्रीय ज्ञान

॥ लावणी ॥

सूक्ष्म तत्व के ज्ञाता सुरपति पूजे,
विचरत आये मथुरा को प्रति वूझे।
भूतगुहा व्यंतर के स्थान टिकावे,
सीमधर पै शक्र तभी चल आवे।
निगोद की वागरणा पूछे सारी ॥ले कर०॥८९॥
सुन के बोला, प्रभो! भरत में को है,
जिनवर बोले रक्षित जग में सो है।
कर ब्राह्मण का रूप स्थविर हो घाया,
एकाकी आचार्य देख चल आया।
पूछे मेरी आयु कहो श्रुतधारी ॥ले कर०॥९०॥

अर्थः—आर्य रक्षित सूक्ष्म तत्व के ज्ञाता थे। विचरण करते हुए एक दिन आप मथुरा नगरी पधारे और वहाँ भूत गुहा नामक व्यतर के स्थान मे विराजे। उस समय शक्रेन्द्र सीमधर प्रभु की सेवा मे महाविदेह क्षेत्र मे गया हुआ था। वहा निगोद का विस्तृत विवेचन सुनकर वह वोला, "भगवन्! भरत क्षेत्र मे भी इस प्रकार का विवेचन व्याख्या करने वाला कोई है?"

सीमंधर प्रभु ने कहा —"मुनि आर्य रक्षित मेरे समान ही निगोद का भाव जानने वाला है ।" यह सुनकर प्रतीति करने के लिए शक्रेन्द एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाकर मथुरा नगरी आया और मुनि आर्य रक्षित को एकाकी देख पूछने लगा—"प्रभो ! मेरी आयु कितनी है ?" ८९-९०॥

॥ लावणी ॥

पूर्वो मे उपयोग लगा जब जाने,
लखा शताधिक वय को अधिक प्रमाणे ।
सुर या मानव चिंतन से सब जाना,
भमुंह उठा कर बोले शक्र पिछाना ।
सत्य जानकर पड़ा चरण मंझारी ॥ले कर०॥९१॥

अर्थ—आचार्य आर्य रक्षित ने पूर्वो में उपयोग लगाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि इसकी वय शत से कही बहुत अधिक है तो यह शंका हुई कि यह देव है या मानव ? नजर उठा कर देखा तो ज्ञात हुआ कि यह तो सागर की स्थिति वाला इन्द्र होना चाहिये । सत्य समझ कर इन्द्र भी आचार्य के चरणो मे गिर पड़ा ॥९१॥

॥ लावणी ॥

निगोद की पृच्छा के भाव सुनाये,
भरत खण्ड का गौरव इन्द्र मनाये ।
क्षण भर ठहरो, देख मुनि स्थिर होगे,
सुरपति बोले निदान वे कर लेंगे ।
आर्य कथन से चिन्ह बदल दिये द्वारी ॥ लेकर० ॥९२॥

अर्थ —पृच्छा करने पर आचार्य ने उन्हे विस्तृत विवेचन सहित निगोद के भाव सुनाये । इन्द्र ने इनको भारतवर्ष का गौरव माना । जब नमस्कार कर इन्द्र जाने लगा तब आचार्य बोले—"ज़रा क्षण भर ठहरो, जब तक छोटे मुनि भी आ जायं । आपको देखकर उनकी श्रद्धा दृढ होगी ।"

इन्द्र ने कहा—"कदाचित् मेरे ठहरने से वे निदान न करले

इसका भय है।" पर छोटे मुनि की श्रद्धा को दृढ करने हेतु शकेन्द्र उपाश्रय का द्वार विपरीत दिशा मे बदल कर चले गये ॥६२॥

आर्य वज्र स्वामी

॥ लावणी ॥

रक्षित के विद्या गुरु वज्र पिछानो,
धनगिरि के प्रिय पुत्र यशस्वी मानो।
गर्भकाल मे पत्नी को तज दीना,
सिंह गिरि के चरणो मे व्रत लीना।
सुनंदा को हुआ पुत्र श्री कारी ॥ ले कर०॥६३॥

अर्थ—आर्य रक्षित के विद्या गुरु वज्रस्वामी थे जो धनगिरि के यशस्वी पुत्र थे। धनगिरि ने अपनी पत्नी आर्या सुनन्दा को गर्भवती छोडकर मुनि सिंहगिरि के पास श्रमण दीक्षा ग्रहण कर ली। फिर कुछ काल के बाद आर्या सुनन्दा की कुक्षी से एक भाग्यशाली पुत्र का जन्म हुआ ॥६३॥

॥ लावणी ॥

बाल ज्ञान से पूर्व जन्म संभारे,
मातृस्नेह को क्षीण करण मन धारे।
रुदन करे अति दिन भर मां घबरावे,
एक समय धनगिरि भिक्षा को आवे।
दीर्घ काल से चिन्तित थी महतारी ॥ ले कर० ॥६४॥

अर्थ—गर्भकाल से ही बालक मे कोई पूर्व जन्म के उत्तम संस्कार पड़े थे, अतः जन्म लेने के कुछ समय पश्चात् ही उसको जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वह पूर्व जन्म की स्मृति करने लगा और माता का स्नेह कैसे घटाया जाय इसकी युक्ति सोचकर दिन भर रुदन करने लगा। माँ संभालते-संभालते थक गई पर बालक का रुदन बन्द नही करा सकी। इससे वह बडी चिंतित थी। इसी बीच कुछ महीनो बाद वहाँ बालक के पिता मुनि धनगिरि का आगमन हुआ। वे जब भिक्षार्थ घर आये तो आर्या सुनन्दा अत्यन्त प्रसन्न हुई ॥६४॥

॥दोहा॥

धनगिरि को लख कहे सुनन्दा,
लो भिक्षा मुनिवर मेरी ।
हुई बहुत हैरान बाल से,
ले लो अब न करो देरी ॥१४॥

अर्थ—धनगिरि को देखकर सुनन्दा बोली—"महाराज ! लो मेरी यह पुत्र भिक्षा । बहुत दिनों से मैं आपके इस पुत्र के कारण हैरान थी, अब आप ही इसे संभालो, देरी मत करो" ॥१४॥

॥दोहा॥

पहले से गुरु ने कह भेजा, मिले वही तुम ले आना ।
भिक्षा में ले बाल पुत्र, धनगिरि आये गुरु के स्थाना ॥१५॥

अर्थ—गुरु ने धनगिरि को यह कहकर भिक्षार्थ भेजा था कि सचित-अचित जो भी भिक्षा मे मिले, ले आना । तदनुसार भिक्षा में बालक को ही लेकर धनगिरि गुरु के पास लौट आये ॥१५॥

॥दोहा॥

भार देख गुरु ने बालक का, वज्र नाम दे रखवाया ।
शय्यातरी के पास पला, फिर योग्य समय संयम ठाया ॥१६॥

अर्थ—गुरु ने शिष्य के द्वारा लाई हुई भिक्षा की झोली पकडी तो भार मालूम हुआ, भारी देख कर गुरु ने उस बालक का नाम वज्र रखा । गुरु ने शय्यातरी बहन को पालन करने हेतु वह बालक सौंप दिया । फिर योग्य होने पर उसे मुनिदीक्षा दी ॥१६॥

॥ लावणी ॥

सुनंदा स्नेहाकुल हो कर आई,
बाल प्राप्ति हित करने लगी लड़ाई ।
न्याय कराने राज सभा चढ़ धाई,
शय्यातरी को नृप ने लिया बुलाई ।
शय्या-तरी बालक की महतारी ॥ लेकर० ॥६५॥

अर्थः—शय्यातरी के पास बालक रोता नही बल्कि बहुत प्रसन्न रहता है, यह सुनकर सुनन्दा पुन: स्नेहाकुल हो गई और बालक को पुनः प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करने लगी। वह पुत्र प्राप्ति के लिए राज सभा मे पहुँची। तो राजा ने उसकी पुकार सुनकर शय्यातरी को बुलाया। दोनों ही राजा के पास पहुँच कर अपने-अपने अधिकार की औचित्यता प्रमाणित करने लगी ॥१५॥

॥दोहा॥

नृप ने उनकी बात श्रवण कर, न्याय करण मन धारा है।
उभय पक्ष के जोर शोर में, सत्य बाल पर डारा है ॥१७॥

अर्थ:—दोनों की बाते सुनकर राजा ने न्याय करने की सोची, पर दोनो ओर की युक्तियां सबल थी। उन पर से निर्णय करना संभव नही था। अतः राजा ने यही उचित समझा कि बालक पर ही न्याय का भार डाला जाय, जहाँ वह रहना चाहे उसी के पास उसे रहने दिया जाय ॥१७॥

॥दोहा॥

सुनंदा ने दिये खिलौने, वज्र न उन पै ललचाया।
धर्म उपकरण देख संघ के, हर्षित मन लेने धाया ॥१८॥

अर्थः—नियत समय पर न्याय लेने दोनो पक्ष जब राज सभा मे उपस्थित हुए, तब सुनन्दा ने पुत्र को आकर्षित करने के लिये खिलौने और मिठाई आदि उसके सामने रक्खे, पर बालक उधर आकर्षित नही हुआ। पर जब संघ की ओर से शय्यातरी ने छोटा रजोहरण और पात्र प्रस्तुत किये तो तुरत ही बालक ने उन्हे लेने को हाथ बढाया। इस पर से राजा ने घोषित कर दिया कि क्योंकि बालक पात्र आदि लेना चाहता है। अत. शय्यातरी ही इसको रख सकती है ॥१८॥

॥ लावरणी ॥

धनगिरि के प्रिय शिष्य वज्र हुए नामी,
सार्थ बना कर देव परीक्षा धामी।
सूक्ष्म मेंढ़की देख कुटी में ठहरे,

लक्षण से कर ज्ञान पिण्ड नहीं वहरे।
देख एपरणा सुर संतोषा भारी ॥ लेकर० ॥६६॥

अर्थः—धनगिरि के परमप्रिय शिष्य वज्र बड़े नामी आचार्य हुए। किसी समय एक देव ने सार्थ वनाकर वाल मुनि की परीक्षा करने की ठानी। उसने वसति की रचना कर भिक्षा के लिये प्रार्थना की। असामयिक जल वर्षा से भूमि पर अगणित मेढकिया घूमने लगी, जिन्हे देख कर मुनि कुटी मे ठहर गये, भिक्षा को नही गये। जब वर्षा की वाधा दूर हुई तो आगे बढे पर भिक्षा मे विना मौसम की वस्तुए देख कर विचार किया और लक्षणो से देव माया समझकर आहार ग्रहण नही किया। उनकी इस ऐपरणा वृत्ति को देखकर देव वडा प्रसन्न हुआ।

॥ लावरणी ॥

प्रतिभाशाली देख गुरु ने सोचा,
बाल मुनि का कौशल लख आलोचा।
ग्रामान्तर विचरण को आप पधारे,
मुनिजन को अनुयोग वज्र अवधारे।
कर सब का सतोष हुए अधिकारी ॥ लेकर० ॥६७॥

अर्थः—वज्रमुनि की शास्त्रीय ज्ञान प्रतिभा अच्छी थी। एकदिन गुरुके वाहर जाने पर वे मुनियो के वेष्टनो को सामने रखकर शास्त्र वाचना करने लगे। ज्योही आचार्य के आने का संकेत मिला वे वेष्टनो को एक तरफ रखकर तत्काल आये और उन्होने आचार्य के चरणो का प्रमार्जन किया। आचार्य ने दूर से ही सव हाल देख लिया था अत वे वाल मुनि की योग्यता से प्रसन्न हो सोचने लगे कि इसकी योग्यता का विकास करना चाहिये। कुछ दिनो के लिये आचार्य स्वयं तो आसपास के गावो में विहार को निकल पडे और शिष्यो की शास्त्र वाचना के लिये वज्र मुनि को नियुक्त कर गये। वज्र मुनि की शास्त्र वाचना इतनी रुचिकर और बोधप्रद रही कि उन्होने शीघ्र ही सभी शिष्यो का आदर प्राप्त कर लिया ॥६७॥

।। लावणी ।।

पूर्वज्ञान हित भद्रगुप्त प जाओ,
बोले गुरुवर ज्ञान अपूर्व मिलाओ।
उज्जैनी मे ज्ञान प्राप्त कर आये,
सिंह गिरि ने भी आचार्य बनाये।
विचरत आये पाटलिपुर यशधारी ।। लेकर० ।।६८।।

अर्थ.—आर्य वज्र मुनि की योग्यता देखकर एक बार इनके गुरु धनगिरि ने कहा—"वत्स ! यदि पूर्वो का ज्ञान सीखना है तो अब आचार्य भद्रगुप्त के पास जाओ, वहाँ तुम्हे ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी।"

आर्य वज्र ने गुरु के आदेशानुसार उज्जयिनी जाकर भद्रगुप्त से पूर्वो का ज्ञान सपादन किया। सिंहगिरि ने भी जब इन्हे सुयोग्य पाया तो आचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर सम्मानित किया। आचार्य हो कर वज्र स्वामी एकदा विचरते हुए पाटलिपुत्र पहुचे ।।६८।।

।। लावणी ।।

धन्य श्रेष्ठि की सुता रुक्मिणी मोही,
क्रोड़ रत्न संग कन्या लो कहे सोही।
बोले मुनि जो पुत्री मम अनुरागी,
हो वह भी संयम पथ की शुभ रागी।
अटल प्रतिज्ञा थी मुनिवर की भारी ।। लेकर० ।।६९।।

अर्थ—पाटलीपुत्र मे धन्य सेठ की पुत्री रुक्मिणी ने जब आर्य वज्र की प्रशसा सुनी तो वह उन पर मुग्ध हो गई और उसने यह प्रतिज्ञा करली कि यदि व्याह करूंगी तो आर्य वज्र के साथ अन्यथा कुवारी रहूँगी। पुत्री के विचार समझ कर सेठ ने आर्य वज्र से कहा—"क्रोड़ रत्नो के साथ इस कन्या को आप स्वीकार करो।"

मुनि ने स्पष्ट कह दिया, "यदि तुम्हारी पुत्री मुझ कर अनुरागिणी है तो वह भी सयम ग्रहण कर सकती है।"

मुनिवर की ऐसी अटल निस्पृहता देखकर उन सबको बड़ा आश्चर्य हुआ ।।९९।।

।। लावणी ।।

धन्य महा मुनिराज धीर व्रत धारी,
विपत्काल मे रखा साहस भारी ।
सावज्ज पथ का गमन दिया है टारी,
जावें हम उनके चरणों बलिहारी ।
वज्रसेन उनके थे पट अधिकारी ।। लेकर० ।।१००।।

अर्थः--ऐसे ज्ञान क्रिया के धनी निस्पृह मुनि को धन्य है जिन्होंने एक समय दुष्काल पीडित क्षेत्र में विहार करते हुए शुद्ध भिक्षा न मिलने पर भी धीरज नही खोया । एव सावद्य मार्ग का उपयोग भी नही किया वल्कि इसके वदले मे अनशनपूर्वक प्राण त्याग करना श्रेष्ठ समझा । ऐसे त्यागी संतो की वार-वार वलिहारी है ।

इनके पट्ट पर वज्रसेन आचार्य हुए ।

आर्य वज्र का भविष्य सूचन और जिनदत्त की दीक्षा

।। लावणी ।।

कालदोष लख वज्रसेन से वोले,
लक्ष पाक भोजन मे जो विष घोले ।
अगले दिन ही दुकाल बाधा मिटसी,
सो पारक मे धर्मलाभ भी मिलसी ।
पुत्र चार संग जिनदत्त दीक्षा धारी ।। लेकर० ।।१०१।।

अर्थः—आचार्य आर्य वज्र ने देश मे व्याप्त भयकर दुष्काल की उस समय की स्थिति को देखकर वज्रसेन के सामने भविष्य वाणी की कि जव किसी को तुम लक्षपाक भोजन मे विप मिलाते देखो, तब दूसरे ही दिन तुम दुष्काल का अ त समझना, देश देशान्तर से उनको प्रभूत अन्न पहुँच जावेगा ।

पूर्व ज्ञान के बल से उन्होने आर्य वज्रसेन से यह भी कहा कि सोपारकनगर मे ही तुम्हे धर्म का लाभ भी मिलेगा। ऐसा ही हुआ और सोपारक के सेठ जिनदत्त ने अपने चार पुत्रो के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। उन चारो पुत्रो के नाम से चद्र, नागेन्द्र, निवृत्ति और विद्याधर नाम की चार शाखाएं चल पडी ॥१०१॥

॥ लावणी ॥

शिष्यों के निर्वाह हेतु मुनि बोले,
विद्या से ला, अन्न धरु तुम खोले।
कहे शिष्य दूषित भोजन नहिं लेना,
संयम बिन हम सब को जीवन देना।
मुनियो के मन में साहस था भारी ॥लेकर०॥१०२॥

अर्थः—उस समय देश मे सर्वत्र व्याप्त भयंकर दुर्भिक्ष के कारण श्रवण साधुओ को शुद्ध भिक्षा मिलना अत्यन्त कठिन हो गया था। ऐसी परिस्थिति में अपने शिष्यो को दुर्लभ शुद्ध भिक्षा के कष्ट से बचाने के लिये आचार्य वज्रसेन ने उनसे कहा—"विद्या बल से तुम चाहो तो, तुम सबके लिए शुद्ध आहार उपलब्ध करादू ?"

परन्तु शिष्यो ने इसे स्वीकार नही किया। उन्होने विद्या बल का दुरुपयोग करने की अपेक्षा अनशन करके प्राण त्याग देना अधिक उत्तम समझा। कितना बडा साहस था ॥१०२॥

सोपारक की घटना इस प्रकार है—

॥ लावणी ॥

वीरकाल छ बीस सेन के युग मे,
सोपारक का सेठ ख्यात था जग में।
काल व्याल से पीड़ित विष घोलावे,
देख मुनि को कहा अमिश्र दिलावे।
ज्ञान मुनि ने हाल दिया दुख टारी ॥लेकर०॥१०३॥

अर्थ —वीर सम्वत् ६२० मे सोपारक नगर के एक प्रसिद्ध जैन धर्मानुयायी सेठ जिनदत्त ने, उस समय देश मे सर्वत्र व्याप्त भयकर दुष्काल से अत्यन्त सतप्त हुए अपने परिवार के दुख मे दुखित होकर एक दिन अपनी धर्मपत्नी ईशरी देवी के साथ परामर्श करके यह निर्णय किया कि अब तो इस असह्य दुष्काल के दुख से छुटकारा पाने के लिये अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ विषपान करके इस शरीर का अन्त कर लेना चाहिये। निर्णयानुसार जिस दिन सारे परिवार के लिये अत्यन्त कठिनाई से उपलब्ध थोडे बहुत बने हुए लक्ष पाक भोजन में वे संखिया मिला रहे थे कि सयोग से उसी समय वज्रसेन मुनि थोडी बहुत शुद्ध भिक्षा मिलने की आशा से उसी सेठ के घर पहुचे।

विष मिश्रित लक्ष पाक भोजन की बात जानकर उन्हे अपने गुरु आचार्य वज्र की भविष्य वाणी स्मरण हो आई। इस पर से मुनि वज्रसेन ने सेठ से कहा कि इस विष मिश्रित भोजन के करने की अब आवश्यकता नही है। इतने दिन कष्ट मे निकाले है तो एक दिन और निकाल दो। कल प्रभूत मात्रा मे अन्न उपलब्ध हो जायगा। यह कहकर मुनि ने उस परिवार को मौत के मुह मे जाने से बचा लिया ॥१०३॥

॥ लावणी ॥

देख अन्न जिनदत्त ईसरी आये,
चार तनययुत गुरु चरणो सिर न्हाये।
प्रतिभाशाली शिष्य चतुर्दिग् गाजे,
चन्द्र--गच्छ तब से ही जग में छाजे।
चारो की शाखाए जग विस्तारी ॥ले कर०॥१०४॥

अर्थ :—मुनि के कथनानुसार अगले दिन देश देशान्तर से आया हुआ धान्य देखकर जिनदत्त और ईसरी बडी श्रद्धा के साथ मुनि के पास आये और चारो पुत्रो के सग मुनि चरणो में दीक्षित हो गये। प्रतिभाशाली चारो शिष्यो के नाम पर चन्द्र, नागेन्द्र, निवृत्ति और विद्याधर ये चार श्रमण गच्छ चले। कहा जाता है कि इन्ही चार के विस्तार से अन्य ८४ गच्छ निकले ॥१०४॥

उस समय के निन्हव

॥ राधे० ॥

रोहगुप्त की बात कहूं अब, कैसे मन में भ्रान्ति हुई।
सत्य मार्ग पर नहि आने से, मिथ्या मत की वृद्धि हुई ॥१९॥

अर्थ:—आर्य रोहगुप्त के मन में कैसे भ्रान्ति हुई और समझाने पर भी सत्य मार्ग पर नही आने से कैसे मिथ्या मत की वृद्धि हुई, यह वताया जा रहा है ॥१९॥

॥ लावणी ॥

आर्यगुप्त के शिष्य बड़े कई ज्ञानी,
रोहगुप्त ने की अपनी मनमानी।
वर्ष पांच सौ चमालीस की वेला,
अंतरंजिकापुर में हो गया मेला।
पोट्टशाल से चर्चा की की तैयारी ॥ले कर०॥१०५॥

अर्थः—आर्यगुप्त के अनेक ज्ञानी ध्यानी शिष्य हुए, उनमे एक रोहगुप्त भी थे, जिनने अपनी मनमानी की। वीर संवत् ५४८ मे अंतरंजिका नगरी मे परिव्राजक पोट्टशाल ने चर्चा का आह्वान किया। नगर मे उसके पांडित्य की महिमा और शास्त्रार्थ की वात फैली तो कुतूहलवश चारो और लोगो का वडा मेला सा लगा रहने लगा ॥१०५॥

॥ लावणी ॥

भूप बलश्री था नगरी का नायक,
श्री गुप्त पधारे विचरते वहां मुनिनायक।
ग्रामान्तर से आर्य रोह चल आये,
परिव्राजक का पड़ह मान्य करवाये।
आकर गुरु से कही बात जब सारी ॥ले कर०॥१०६

अर्थः—महाराज वलश्री अंतरजिका के प्रजापालक शासक थे। संयोगवश आचार्य श्री गुप्त भी विचरते हुए वहां पधार गये। उस समय

रोहगुप्त जो पास के दूसरे गाव में थे, वह भी वहा चले आये। परिव्राजक की ओर से शास्त्रार्थ का डका बज रहा था। जब रोहगुप्त ने इसे सुना तो जोश में पड़ह झेल लिया और कहा—"मैं चर्चा करूंगा।"

मिलने पर उसने सारी बाते अपने गुरु आचार्य से निवेदन की ॥१०६॥

॥ लावणी ॥

बोले गुरुवर बात भली नहि कीनी,
वादी की शक्ति नहि तुमने चीन्ही।
विद्या से उन्मत्त पराजित हो कर,
पीड़ा देगा विद्या से वह पामर।
गुरु ने दी विद्या रक्षणहित भारी ॥ले कर०॥१०७॥

अर्थः—रोहगुप्त की बात सुनकर आचार्य बोले—"शिष्य! पोट्टशाल से शास्त्रार्थ स्वीकार कर तूने अच्छा नही किया। वह मायावी और शक्तिमान् है। तुमने उसको पहचाना नही है। वह यदि पराजित भी हो गया तो विद्याबल से तुमको कष्ट देगा। किन्तु शास्त्रार्थ स्वीकार कर लिया है अत तुम्हारे संरक्षण हेतु सात विद्याए मै तुम्हे देता हूं। इनका आवश्यकतानुसार उपयोग करने से तुम हार से बच जाओगे ॥१०७॥

॥ लावणी ॥

वादी बोला तत्त्व दोय है जग में,
कहा रोह ने तीजा देखो पग में।
जीव, अजीव, नोजीव जान लो ऐसे,
कटी पुच्छ हलचल करती यह कैसे।
पोट्टशाल की हो गई हार करारी ॥ले कर०॥१०८॥

अर्थः—शास्त्रार्थ आरंभ करते हुए वादी ने पूर्वपक्ष रखा—"ससार मे दो तत्त्व है। जीव और अजीव यानि जड एव चेतन।"

रोहगुप्त ने इसका खण्डन करते हुए कहा—"नही, जीव अजीव और

नोजीव—नोअजीव ऐसे तीन तत्त्व मानने चाहिये। जैसे छिपकली की पूंछ कटने पर भी वह हिलती रहती है और तेज वटी हुई यह रस्सी भूमि पर घूम रही है। पर इसको जीव या अजीव नही कह सकते क्योकि इसमे क्रिया है।"

पोट्टशाल इसका उत्तर नही दे सका, अतः उसकी हार हो गई ॥१०८॥

॥ दोहा ॥

रोहगुप्त की विजय श्रवण कर, गुरुवर ने आदेश दिया।
राज सभा में सत्य बता कर, भ्रान्ति दूर कर दो भाया ॥२०॥

अर्थः—रोहगुप्त ने जव गुरु से आकर जीतने की वात कहीं, तव गुरु वोले—"गुप्त! तीसरी राशि कायम कर के तूने ठीक नही किया। यह शास्त्र विरुद्ध है। अतः राज सभा मे जाकर इसे स्पष्ट कर दो, ताकि लोग भ्रान्ति मे नही पड़े" ॥२०॥

॥ लावणी ॥

रोहगुप्त ने गुरु आज्ञा नही मानी,
राजा को गुरु ने कह दी सब छानी।
राजसभा मे निग्रह करना ठाना,
चला वाद षण्मास न तत्त्व पिछाना।
गुरु चरणों मे विनय करी सुखकारी ॥लेकर०॥१०९॥

अर्थ—जव रोहगुप्त ने समझाने पर भी गुरु आज्ञा स्वीकार नही की तव आचार्य ने राजा को सारी सही स्थिति से अवगत कराया और राजसभा मे शिष्य से शस्त्रार्थ कर सत्यासत्य का निर्णय करना निश्चित गया।

गुरु शिष्य के वीच छः मास तक राज्य सभा मे वाद-विवाद चलता रहा। भिन्न-भिन्न प्रकार से समझाने पर भी शिष्य ने अपना हठ नही छोड़ा, तव राजा ने विनयपूर्वक गुरु से प्रार्थना कि—"भगवन् निर्णय शीघ्र हो तो अच्छा है" ॥१०९॥

॥ लावणी ॥

राज कार्य मे विघ्न देख गुरु बोले,
कल ही निग्रह करूं सत्य जग तोले ।
प्रात सभा में कहा हाट में देखो,
मिला न तीजा द्रव्य परखलो लेखो ।
शल पर चंवालीस प्रश्न किये भारी ॥लेकर०॥११०॥

अर्थः—गुरु ने भी जव परिणाम शीघ्र निकलता नही देखा, तब सोचा कि राजकार्य मे व्यर्थ ही इस चर्चा के लम्वी होते जाने के कारण वाधा हो रही है। अतः शास्त्रार्थ को आगे न वढ़ा कर कल ही समाप्त कर देना चाहिये। जनता को मालूम हो जाय कि सत्य क्या है।

प्रातःकाल चर्चा चलते ही उन्होने कहा—"कुत्रिका पण जो एक दैवी हाट है, उसमे ससार भर की चीजे मिलतो है, वहा से नोजीव, नो अजीव मंगाया जाय।"

पर खोजने पर भी जीव और अजोव के अतिरिक्त तीसरी वस्तु वहां नही मिली। अतः निश्चय हुआ कि ससार में दो ही तत्त्व-पदार्थ है, तीसरा नही। गुरु शिष्य के वीच १४४ प्रश्न और उत्तर हुए। अन्त मे गुरु की विजय हुई और शिष्य पराजित हो गया ॥११०॥

॥लावणी॥

दर्शन मोह के उदयगुप्त ने धारा,
षट् पदार्थ का मन में जमा विचारा ।
भूप साक्षि गुरु ने निग्रह कर डाला,
गुरु विरोध से दिया स्वदेश निकाला ।
वैशेषिक मत किया जगत में जहारी ॥लेकर०॥१११॥

अर्थः—गुरु ने राजसभा मे रोहगुप्त को युक्तिपूर्वक निरुत्तर किया फिर भी मिथ्यात्वमोह के उदय से उसने सत्य स्वीकार नही किया। उल्टे षट् पदार्थ का सिद्धान्त लेकर मिथ्या मत का प्रचार करने लगा। तव गुरु आज्ञा की अवज्ञा करते देखकर राजा ने उसे देश-वाहर कर दिया। रोहगुप्त

ने भी आवेश मे आ कर वैशेषिक मत प्रारम्भ किया, जिसका अपर नाम "षडलूक" है। इनके मत मे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष और समवाय ऐसे छ ही द्रव्य माने गये है ॥१११॥

॥लावणी॥

द्रव्य गुणादिक तत्त्व षट्क वो माने,
महोदय से सत्य मर्म नहिं जाने।
वीर काल शत पंच अठचालिस जानो,
गये स्वर्ग श्रीगुप्तसूरि बलहानो।
रोहगुप्त ने मिथ्या मत विस्तारी ॥लेकर०॥११२॥

अर्थः—द्रव्य गुणादिक छ ही तत्त्व उसने मान्य किये। मोह कर्म के प्रवल उदय से उसने धर्म के सही मर्म को नही समझा। वीर निर्वाण सवत् ५४८ मे जव आचार्य श्रीगुप्त का स्वर्गवास हो गया तव शासन का वल कमजोर हुआ और रोहगुप्त को मिथ्या मत के प्रचार का खुलकर अवसर मिला ॥११२॥

सातवां निन्हव

॥ लावणी ॥

सप्तम निन्हव गोष्ठामाहिल जानो,
वर्ष पांच सौ चौरासी पहिचानो।
पूर्व बांचते अवद्धदृष्टी आई,
बंधभेद में सहज समझ नहीं आई।
रक्षित के शासन में शंका भारी ॥लेकर०॥११३॥

अर्थः—आर्य वज्र और वज्रसेन के वीच के काल मे आर्य रक्षित और दुर्वलिका पुष्यमित्र नामक दो युग प्रधान आचार्य हुए।

आवश्यक वृत्ति के अनुसार इनके स्वर्गवास के वाद वीर संवत् ५८४ मे सातवे निन्हव गोष्ठा माहिल की उत्पत्ति हुई। पूर्व का वाचन करते हुए

इनको अवद्ध दृष्टि उत्पन्न हुई। वधभेद की वात इनके समझ मे नही आई। फलस्वरूप आर्य रक्षित के शासन मे ये शकाशील रहे और सत्य को छिपाने से निन्हव कहे गये ॥११३॥

॥लावणी॥

कर्मबन्ध के विषय शास्त्र बतलावे,
माहिल के मन मिथ्या तर्क सुहावे।
बद्ध, पुट्ठ, सुनिकाचित बंध बतावे,
क्षीर, नीर या कंचुकी सम समझावे।
एक रूप मे कैसे हो अधिकारी ॥लेकर०॥११४॥

अर्थः—शास्त्र में कर्म-वन्ध के सम्वन्ध मे युक्ति पूर्वक समझाया गया है। फिर भी माहिल के समझ मे बात नही आई। वह वैसे ही मिथ्या तर्क करता रहा कि वध-के वद्ध, स्पप्ट और निकाचित रूप से तोन भेद किये गये है एवं आत्मा के साथ कर्म का वध क्षीर—नीरवत् है या सर्प—कचुकी सम ? और यदि एकरूप नीर-क्षीरवत् माना जाय तो फिर आत्मा शुद्ध वुद्ध पद को कैसे प्राप्त करेगा? ॥११४॥

उत्तर

॥ लावणी ॥

एक रूप होकर भी जल सूकावे,
आत्मप्रदेश से कर्म क्रिया से जावे।
कंचुकी सम संबंध न युक्त कहावे,
सभी मुक्त हो जीव भूल क्यो आवे।
विंध्य आदि ने युक्ति वताई सारी ॥ लेकर० ॥११५॥

अर्थः—दूध मे पानी एक रूप होकर भी अग्नि के सयोग से सूख जाता है। वैसे कर्म भी करणी द्वारा आत्मप्रदेश से छूट जाते है। अतः दूध पानी की तरह आत्मा के साथ कर्म का वध माना गया है। कर्म वन्ध मे कचुकी का उदाहरण उचित नही। वैसा मानने पर सभी जीव मुक्त रहेगे,

फिर कर्म का वन्धन कैसे होगा ? इस प्रकार विध्य आदि मुनियो ने युक्ति से समझाया ॥११५॥

गौष्ठा माहिल का परिचय

॥ लावणी ॥

एक समय गणि विचरत दशपुर आये,
अक्रियवादी मथुरा में सुनवाये ।
संघ मिला वादी न दृष्टि मे आया,
रक्षित पै संघाट भेज कहलाया ।
वाद हेतु गोष्ठामाहिल बलधारी ॥ लेकर० ॥११६॥

अर्थः—आर्य रक्षितसूरि एक वार दशपुर नगर पधारे । उस समय मथुरा मे अक्रियावादियो का जोर था । संघ एकत्र हुआ पर कोई समर्थ वादी दृष्टिगोचर नही हुआ । जो उनको उत्तर दे सकता । तब आचार्य रक्षित के पास सदेश भेजकर सघ ने उनको मथुरा वुलवाया । आचार्य स्वयं तो न आ सके, पर अपने योग्य शिष्य गोष्ठामाहिल को वाद के लिए वहाँ भेजा क्योकि उस समय परिस्थिति के अनुसार गुरु ने उसे ही योग्य समझा । गोष्ठामाहिल प्रतिभाशाली थे और वाद मे भी अत्यन्त कुशल थे ॥११६॥

॥लावणी॥

गुरु आज्ञा से गोष्ठामाहिल जावे,
तर्कवुद्धि से वाद विजय कर आवे ।
भक्तजनो ने हर्षित हो ठहराया,
मुनि ने वर्षाकाल वहीं पर ठाया ।
गणनायकहित गुरु ने बात विचारी ॥ लेकर० ॥११७॥

अर्थः—गुरु की आज्ञा पाकर गोष्ठामाहिल शास्त्रार्थ हेतु मथुरा गये । अपने तर्कवल पर वाद मे विजयी होकर वे गुरु के पास लौट आये । उनकी विद्वत्ता से प्रभावित हो संघ ने वर्षाकाल के लिये आग्रह किया तो मुनि भी आग्रहवश वही वर्षाकाल के लिये विराज गये । आचार्य आर्य रक्षित ने

अपने शरीर की स्थिति क्षीण देखकर उत्तराधिकारी के लिये संघ मे विचारणा की। उस समय मुनिमण्डल मे उत्तराधिकारी के लिये मतभेद था ॥११७॥

उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में मतभेद

॥ लावणी ॥

दुर्बलिका को गणि ने लायक समझा,
पर मुनिजन के मन को प्रिय था दूजा।
भेद बताकर गणि ने सब समझाया,
दुर्बलिका को नायक मान्य कराया।
यथायोग्य शिक्षा दी जनहितकारी ॥ लेकर० ॥११८॥

अर्थः—आचार्य रक्षित ने दुर्बलिका पुष्य को योग्य समझा किन्तु मुनियो का इसमें मतभेद था। आर्य रक्षित के (१) घृत पुष्यमित्र (२) वस्त्र-पुष्य, (३, दुर्बलिका पुष्य, (४) विध्य मुनि, (५) फल्गु रक्षित और (६) गोष्ठा माहिल आदि मुख्य शिष्य थे। मुनियो मे से कुछ फल्गु रक्षित को, तो कुछ गोष्ठामाहिल को आचार्य वनाने के पक्ष मे थे।

आचार्य ने सवको समझाने के लिये युक्ति निकाली। उन्होने तीन घड़े मगवाये, एक में उडद, दूसरे मे तेल और तीसरे मे घी भरवाया, फिर उन घड़ो को उल्टा करवाया तो उड़द का घड़ा बिलकुल साफ था। तेल वाले मे कुछ लगा रहा और घी वाले मे वहुत लगा रहा। उन्होने कहा, "दुर्वलिका मे उडद के घडे की तरह मै खाली हो गया हूँ।"

आचार्य का भाव समझ कर सवने दुर्वलिका पुष्य को अपना नायक स्वीकार किया। दुर्वलिका पुष्यमित्र का ज्ञानाभ्यास अनुकरणीय था। आचार्य ने दुर्बलिका को गण की भोलावण दी और साधुओ को भी यथा-योग्य शिक्षा दी ॥११८॥

॥ लावणी ॥

सूरि और मुनिगण को सीख करावे,
अनशन करके आर्य स्वर्ग पद पावे।

स्वर्गवास सुन गोष्ठामाहिल आये,
आकर पूछा गणधर किसे बनाये।
हुई हकीकत कही संघ ने सारी॥ लेकर० ॥११६॥

अर्थः—नवनिर्वाचित आचार्य और मुनिगण को शिक्षा देकर आर्य रक्षित अनशनपूर्वक स्वर्गस्थ हो गये। गोष्ठामाहिल भी आचार्य का स्वर्गवास सुन कर आये। गणाचार्य के लिये पूछा तो ज्ञात हुआ कि दुर्वलिका को आचार्य ने गणाचार्य नियुक्त किया है। संघ से इस विषय की सब जानकारी गोष्ठामाहिल को मिली ॥११६॥

॥लावणी॥

सुन कर वार्ता पृथक् स्थान स्वीकारा,
कहा सभी ने पर नहीं एक विचारा।
सूत्रवाचना करे अलग मनभावे,
अर्थ पौरसी मे न श्रवण को आवे।
गणनायक से मन में रखता खारी॥ ले कर० ॥१२०॥

अर्थः—सघ से सारी वस्तु स्थिति जानकर गोष्ठामाहिल को खेद हुआ। वे सबके कहने पर भी वहाँ नही ठहर कर अलग उपाश्रय मे ठहरे। सूत्र पोरसी में स्वाध्याय अलग करते और अर्थ पोरसी मे भी गणाचार्य के पास सुनने को नही आते। गणाचार्य से मन मे द्वेष रखने लगे। सचमुच मोह का तीव्र उदय वडे-वडे ज्ञानियो को भी चक्कर मे डाल देता है ॥१२०॥

॥ लावणी ॥

गणी के पीछे विंध्य वाचना करते,
पूर्व आठवां वे भी आ वहां सुनते।
मोह उदय से उल्टी मत ली झाली,
आत्मा का नही होता बंध निहाली।
विंध्य मुनि ने सूरि को कह डारी॥ ले कर० ॥१२१॥

अर्थ:—गणाचार्य की वाचना हो जाने के वाद जव विंध्य मुनि अर्थ

वाचना करते तव गोष्ठामाहिल भी वहा आकर आठवे पूर्व का भाव श्रवरण करते किन्तु कांक्षा मोह के उदय से उन्होने सुनते हुए भी विपरीत ग्रहण किया। निश्चय से आत्मा का कर्म से बंध नही होता, इस नयवचन को विना समझे उन्होने एकान्त पकड लिया। विन्ध्य मुनि ने यह वात गणाचार्य को कह सुनायी ॥१२१॥

॥लावरणी॥

समाधान हित सूरी ने समझाया,
अन्य गच्छ के स्थविरों से चर्चाया।
संघ अधिष्ठायक सुर सुमिरण कीना,
जिनवचनों से उसने निर्णय दीना।
देख आग्रही किया संघ ने बहारी ॥ ले कर० ॥१२२॥

अर्थ :—गोष्ठामाहिल का समाधान करने के लिये आचार्य दुर्वलिका पुष्य ने उनको विविध प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया। अन्य गच्छ के स्थविरो के साथ उनकी चर्चा कराई किंतु उनका समाधान नही हुआ। तब उन्होने शासन के अधिष्ठायक देव का स्मरण किया। उसने प्रत्यक्ष होकर जिनवचनानुसार सत्य निर्णय दिया। फिर भी गोष्ठामाहिल ने अपने आग्रह को नही छोडा। फलस्वरूप सघ ने उसको आज्ञावाहिर घोषित कर दिया ॥१२२॥

संप्रदाय भेद

॥ लावरणी ॥

शासन में हुआ भेद कहूं अब सुन लो,
छ सौ नव की साल ध्यान में धर लो।
जिन शासन का संघ एक था तब तक,
प्रकट हुआ यह भेद नहीं था अब तक।
बीज फूट कर कैसे शाख प्रसारी ॥ ले कर० ॥१२३॥

अर्थः—कालदोप से कालान्तर में जिन शासन मे दुर्वलता आई और वीर निर्वाण सम्वत् ६०६ में सघ की एकता मे एक दरार पड गई ।

जैन संघ श्वेताम्बर और इस तरह दिगवर के दो भागो में वंट गया। यह भेद कैसे और कहाँ पड़ा, यह संक्षेप मे वतलाया जा रहा है। अभी तक जिन शासनमे एक ही सघ था, उसमे कोई सम्प्रदाय भेद नही था। वीर स० ६०६ में भेद का वीज फूट कर कैसे फला फूला, इसका इतिहास इस प्रकार है ॥१२३॥

॥ लावरणी ॥

आर्य कृष्ण आचार्य एक दिन आये,
पुर रथवीर के दीप उद्यान सुभाये।
राजमान्य शिवभूति पुरोहित जानो,
राजकार्य से काल अकाल नउ मानो।
गृह देवी सत्कार करत यो हारी ॥ लेकर० ॥१२४॥

अर्थ-—रथवीरपुर मे एक दिन आचार्य आर्य कृष्ण पधारे और नगर के दीप उद्यान मे विराजमान हुए। वहाँ का राजमान्यपुरोहित शिवभूति जो राजकार्य मे वडा दक्ष था, वह राजकार्य से समय वेसमय घर पहुँचता। पुरोहितानी को प्रतिदिन उनकी प्रतीक्षा करनी पडती। एक दिन शिवभूति रात को वहुत देर से आये, जव कि पुरोहितानी की आँखो में नीद भरी हुई थी। पुरोहित की इस देर से आने की आदत से गृहिणी दु.खी थी। एक दिन उसने अपनी सास से अपने इस दु ख की सारी गाथा कह सुनाई ॥ १२४ ॥

॥लावरणी॥

बोली मां पुत्री न चित्त अकुलाओ,
द्वार वन्द दस वादन पै करवाओ।
जागृत रह कर मै सुत को समझाऊं,
जव आवेगा सच्ची सीख सुनाऊ।
आने पर मां ने नहीं द्वार उघारी ॥ ले कर० ॥१२५॥

अर्थ – पुत्रवधू की वात सुनकर सासू ने कहा—"वेटी चिता की कोई वात नही। तुम दस वजे वाद द्वार वंद कर देना। आज तुझे प्रतीक्षा मे वैठे रहने की आवश्यकता नही हे। मै जागूंगी और जव शिवभूति आवेगा तो उससे वात करूंगी।"

सासू के कथनानुसार पुरोहितानी सो गई। प्रतिदिन की भॉति अर्द्ध रात्रि के वाद शिवभूति ने आकर द्वार खटखटाया पर मा ने दरवाजा नही खोला।

पुकारने पर वह वोली—"इतनी रात जिनके द्वार खुले हो वही जाओ। मेरे यहॉ इस तरह वे समय आने वाले के लिये स्थान नही है" ॥१२५॥

॥लावणी॥

दीक्षा ले कर गुरु सग जनपद जावे,
विचरत सहसा फिर उस पुर मे आवे।
हर्षित हो राजा ने भेट दिलायी,
मुनि ने उसको आदर से रखवाया।
मूल्यवान् पट पर थी ममता भारी॥ ले कर० ॥१२६॥

दीक्षा

अर्थ —मा के उत्तर से निराश हो कर शिवभूति लौट पडे और नगर मे घूमते हुए जैन उपाश्रय का द्वार खुला देखा तो वे वहाँ गये और आर्य कृष्ण के पास उपदेश श्रवण कर दीक्षित हो, ग्रामान्तर की ओर दूसरे दिन विहार कर गये। फिर विचरते हुए एकदिन सहसा रथवीरपुर आये। राजा को मालूम हुआ तो हर्षित हो उसने मुनि को वंदना की और एक वहुमूल्य रत्न कम्वल मुनि को भेट रूप मे अर्पण किया। मुनि ने भी राजा की भेट को आदर से स्वीकार किया। अधिक मूल्यवान् होने से मुनि की उस पर ममता रहने लगी, अतः उन्होने वड़ी हिफाजत से उसको वाध कर रखा ॥१२६॥

॥लावणी॥

जान गुरु ने एक दिन छेदन कीना,
खंड खंड कर शिष्यों को दे दीना।
शिवभूति के मन में खेद अपारा,
पढ़त पूर्व को लिया उलट मत घोरा।
वस्त्र सहित का संयम नहिं सुखकारी ॥ लेकर० ॥१२७॥

अर्थ.—गुरु को इस बात का पता चला तो उन्होंने एक दिन उस बहुमूल्य वस्त्र के खंड खंड कर उसे अन्य शिष्यों में बाँट दिया। शिवभूति ने आकर जाना तो उसके मन में इससे बहुत खेद हुआ। इस पर से पूर्व श्रुत को पढ़ते हुए उसने यह भ्रान्ति पकड़ ली कि वस्त्र सहित का संयम सुखदायी एवं निर्दोष नहीं होता ॥१२७॥

॥ लावणी ॥

मुनि मन पाया दुख प्रकट नहीं बोले,
शास्त्र श्रवण कर सहसा मन को खोले।
वस्त्र त्याग कर पूरा साधन करना,
कहे गुरु से हो तब ही भव तरना।
आकाशाम्बर मत चला हुए व्रतधारी ॥लेकर०॥१२८॥

अर्थ:—गुरु के सम्मान हेतु मुनि शिवभूति बाहर से तो कुछ नहीं बोले पर मन ही मन उनको बड़ा दुख हो रहा था। एक दिन शास्त्र में जिन कल्प का वर्णन चला तब मुनि सहसा बोल उठे—"ठीक है, वस्त्र का सम्पूर्ण त्याग कर विचरना ही अपरिग्रही मुनि का मार्ग है। पक्षी पंखों को समेट कर चलता है पास मे कुछ भी लेकर नहीं चलता, हमे भी वैसे ही शुद्ध मार्ग का आराधन करना चाहिये।'

इस प्रकार की धारणा मे शिवभूति ने दिगम्बर परम्परा को चालू किया।

॥ लावणी ॥

श्वेताम्बर अरु आकाशाम्बर कहलाये,
श्रमणसंघ में भेद तभी प्रगटाये।

हुए भक्तजन साथ संघ को तोड़ा,
मतरागी हो अर्थ शास्त्र का मोड़ा ॥
भोग रहे फल हम उसका भयकारी ॥लेकर०॥१२९॥

अर्थ —इस प्रकार वीर निर्वाण सवत् ६०९ मे श्वेताम्बर और दिगम्बर रूप से श्रमणसघ के दो टुकड़े हो गये। मतरागी होकर दोनो ने शास्त्र के अर्थ को अपने अनुकूल मोड लिया। आग्रहवश जिन शासन के मर्म को भूलकर एकान्त पकड बैठे। उसी का कटु फल आज हम सम्प्रदाय-भेद के रूप मे भोग रहे है। वास्तव मे तो जिन शासन ने मूर्च्छा को परिग्रह का मूल माना है ॥१२९॥

॥लावणी॥

पट—धारण एकान्त परिग्रह जाना,
नारी को सम्पूर्ण त्याग नही माना।
बहन उत्तरा को गणिका पट दीना,
कोट्टवीर कोडिन्य शिष्य दो कीना।
भाष्य ग्रन्थ में लिखा हाल विस्तारी ॥लेकर०॥१३०॥

अर्थ —शिवभूति ने वस्त्रधारण को एकान्त परिग्रह मान कर साधु के लिये उसका सर्वथा निषेध किया। गुरु ने समझाया कि सम्पूर्ण निषेध जिनकल्पी के लिये होता है और वर्तमान मे सहनन की दुर्बलता से जिन कल्प विच्छेद है। तीर्थकर भगवान् भी देवदूष्य वस्त्र रख कर यह प्रगट करते है कि जिन शासन एकान्त सवस्त्रवादी या अवस्त्रवादी नही है।

इतना कहने पर भी शिवभूति की समझ में बात नही आई और वे नग्न होकर जगल मे चले गये। शिवभूति के स्नेह से उसकी बहन 'उत्तरा' भी साध्वी हो गई थी। जब वह वदन के लिये उद्यान मे गई और भाई को पूर्ण अचल देखा तो उसने भी वस्त्र त्याग दिये। भिक्षा के समय नगर की एक वेश्या ने उसको नग्न देखा तो उसने उस साध्वी को साडी पहना दी।

शिवभूति के कोडिन्य और कोट्टवीर दो शिष्य हुए। इस प्रकार शनै शनै दिगम्बर परम्परा का प्रचार बढ़ता गया। शिवभूति के बदले

कुछ आचार्य सहसमल से दिगवर मत की उत्पत्ति वतलाते हैं। श्वेताम्वर परंपरा के विशेषावश्यक भाष्य आदि मे इसकी विशेष जानकारी उपलब्ध हैं ॥१३०॥

॥लावणी॥

समझाया पर नही ध्यान में आया,
सूक्ष्म दोष का दिन दिन विष फैलाया।
समझ दोष का आदि रूप सभालो,
नहिं तो होगा बढ़कर विषधर कालो॥
हमको अब हित शिक्षा लेना धारी ॥लेकर०॥१३१॥

अर्थः—शिवभूति को समझाने पर भी वात उसके ध्यान मे नही आयी और छोटी सी वात से संघ मे मतभेद का वडा जहर फैल गया।

यदि समझ भेद के प्रारम्भ काल मे ही भ्रम मिटा दिया जाय तो आसानी से काम हल हो जाता है अन्यथा छोटा सा भ्रम भी कालान्तर में वड़ाकाला विषधर हो जाता है। भूत की घटना से हमको वर्तमान मे शिक्षा लेकर चलना चाहिये ॥१३१॥

॥लावणी॥

मुक्तिलाभ अम्बर से रुकता नाही,
मोहावरण ही सिद्धि रोकता भाई।
कर्माम्बर से दूर आतमा होवे,
सत्य समझ लो तव ही बंधन खोवे॥
शुक्ल ध्यान ही श्वेताम्बर सुखकारी ॥१३२॥

अर्थः—वास्तव मे मुक्ति का अवरोध वस्त्र-अम्बर से नही होता। वास्तव मे तो कषाय और मोह का आवरण ही मुक्ति को रोकने वाला है।

मोक्ष प्राप्ति के लिये आत्मा से मोह कर्म का अम्बर दूर करना चाहिये, उसको यदि सर्वथा दूर कर दिया तो निश्चय समझो कि आत्मा को कर्म बंधनों से मुक्ति अवश्यंभावी है।

श्वेताम्वरो का श्वेत वस्त्र शुक्ल ध्यान का प्रतीक है जो सिद्धि मे सहायक होता है और वह सव परम्पराश्रो के लिये आदरणीय है ॥१३२॥

॥लावणी॥

सप्तवीस पट्ट चरण मार्ग रहे चाली,
चैत्यवास से बढ़ी शिथिलता भारी ।
वीर काल अठयांसी मे जानो,
चैत्यवास का जोर रहा नही छानो ।
द्रव्य और जल फूल किये स्वीकारी ॥लेकर०॥१३३॥

अर्थः—वीर निर्वाण संवत् ६२० के आसपास चन्द्र सूरि से चन्द्र गच्छ या चन्द्र शाखा की उत्पत्ति हुई और सामत भद्रसूरि से 'वनवासी' गच्छ नाम प्रसिद्ध हुआ । ये निर्मोह भाव से वन या उद्यान मे रहते इसलिये लोको ने इस गच्छ का नाम वनवासी रखा ।

वीर संवत् ६४५ मे वल्लभी नगरी का भग हुआ और ८८२ में चैत्यवास का जोर वढा । जैन साधुओ के कठोर आचार की पालना मे अपनी असमर्थता से कितने ही साधु शिथिल होने लगे और वे अन्त मे चैत्यवासी हो कर रहने लगे ।

धीरे-धीरे इस चैत्यवास परम्परा का प्रभाव वढता गया और वीर म० ८८२ मे तो वह अधिक वलवती हो गई हो, ऐसा प्रतित होता है ।

भगवान् महावीर से २७ पाट तक शुद्ध मार्ग चलता रहा । किन्तु चैत्यवास से साधुओ के आचार मे शिथिलता का जोर वढने लगा । जैसा कि उपाध्याय धर्मसागर जी ने अपनी तपागच्छ पट्टावली के पृष्ठ ९० मे लिखा है—"साधु लोग मठवास की तरह चैत्यवास करते । मन्दिर के द्रव्य को अपने लिये उपयोग करते, साध्वियो का लाया हुआ आहार खाते और सचित्त फल-फूल और जल का उपयोग करने लगे ।"

चन्द्र आदि शाखाओ से जैसे गच्छभेद का विस्तार हुआ वह नीचे वताया जा रहा है ॥१३३॥

॥ लावणी ॥

वड़ गच्छ आदिक हुए कई शासन में,
चरण मार्ग में भेद पड़ा गण गण मे।
१२५० ११५९ १२०४
आगमियां, पूनमियां, खरतर जानो,
१२१३
अंचल से यतना कर आंचल माना।
आत्म अर्थ ना भाव घटा दुखकारी ।।लेकर।।१३४।।

अर्थ—वीर सं० १४६४ यानि वि० सं० ९९४ मे किसी समय विचरते हुए उद्योतन सूरि आबू के पास टेलिगाव पधारे और उसकी सीमा मे विशाल वटवृक्ष की छाया मे बैठकर शासन उदय का विचार करने लगे। उस समय शुभ मुहूर्त जान कर उन्होने सर्वदेवसूरि को अपने पद पर प्रतिष्ठित किया। वड वृक्ष के नीचे पदस्थापना करने से उसको लोक में वड़गच्छ के नाम से कहने लगे। निर्ग्रन्थ गच्छ का यह पाचवां नाम हुआ।
[तपागच्छ पट्टावली पृ० १०५]

गच्छों के कारण जिन शासन मे जो भेद पड़ा उससे वड गच्छ आदि गच्छो मे देश काल और स्थिति भेद से प्रत्येक के आचार मे भी भेद पडता गया जो इस प्रकार है —

सर्वदेव के वाद विनयचन्द्र उपाध्याय के शिष्य मुनि चन्द्रसूरि हुए जो शुद्ध संयमी थे, मात्र छाछ पीकर रहते थे।

उन के गुरुभाई चन्द्रप्रभु मुनि से वि० सं० ११५९ में पूनमिया गच्छ की उत्पत्ति हुई।

वैसे ही वि०सम्वत् १२०४ मे खरतरगच्छ की, सं० १२१३ मे आचलिया मत की, तथा वि० सवत् १२५० मे आगमिक मत की उत्पत्ति हुई।

आचल मत की धारणा थी कि चद्दर के अ चल से यतना कर ली जाय तो मु हपती की क्या जरूरत है। इस प्रकार शासन मे गच्छ तो वढ़े पर साधना वल और आत्मार्थीपन का भाव घटता गया।

गच्छों की उत्पत्ति व विशेषता

पूर्णिमा (पूनमिया) गच्छ—मुनि चन्द्रसूरि के गुरु भ्राता चन्द्र प्रभ ने स० ११५९ मे पूर्णिमा मत प्रकट किया। चवदस की पक्खी के स्थान पर इन्होने पूनम को पक्खी करना प्रचलित किया। इस पर मुनि चन्द्रसूरि ने पाक्षिक सूत्र द्वारा इस मत के अनुयायियो को समझाने का प्रयत्न किया।

खरतर गच्छ की उत्पत्ति.—जिनेश्वर सूरि के शिष्य जिनवल्लभ वड़े विद्वान् और प्रतिभाशाली थे। कहा जाता है कि जिनेश्वर चैत्यवासी हो गये।

जिन वल्लभ ने एक दिन दशवैकालिक सूत्र का स्वाध्याय करते समय साधु का आचार जानकर गुरु से पूछा—"भगवन्! अपने आचार और शास्त्र के वचन मे तो फर्क है।"

गुरु ने अपनी कमजोरी वतलाई।

जिन वल्लभ ने सत्य जानने हेतु अभय देव सूरि के पास जाकर शास्त्र का अध्ययन किया और पूर्ण गीतार्थ हो गये।

पट्टावली के अनुसार सं० १२०४ मे जिनदत्त सूरि से खरतर गच्छ की स्थापना कही जाती है, परन्तु प्रभावक चरित्र मे कूर्चपुर गच्छीय जिनेश्वर सूरि को मुनि चैत्यवास को शास्त्रार्थ में पराजित करने वाला कहा गया है। उनके अनुसार दुर्लभराज की सभा मे चैत्यवास के साथ वाद-विवाद मे उनकी विजय होने से दुर्लभराज ने कहा—"ये खरे है अर्थात् खरतर कठोर करणी करने वाले है।"

तव से जिनेश्वर सूरि और उनकी परम्परा खरतर गच्छीय कही जाने लगी।

इस समय मेटपाट् (मेवाड) आदि मे चैत्यवास का विशेप जोर था। इसलिये इन्होंने उस प्रान्त की ओर विहार किया। जिनेश्वर के बाद इनके शिष्य जिनवल्लभ हुए। ये चैत्यवास के कट्टर विरोधी थे। सवत्

११६७ में जिन वल्लभ का स्वर्गवास हुआ और उनके पट्ट पर जिनदत्त सूरि हुए जो वडे प्रभावक थे। [तपागच्छ पट्टावली पृ० १२४ गु०]

आंचल गच्छः—विक्रम की तेरहवी सदी मे अधिकतर श्रमण साधु शिथिलाचारी हो गये और अपनी अपनी इच्छा से नयी नयी क्रिया स्वीकार कर अपने २ मत का प्रचार करने लगे। इसी शिथिलाचार के समय मे खरतर, आचल, सार्धपौर्णमीय और आगमिक मतों की उत्पत्ति हुई।

आचल गच्छ की उत्पत्ति का रूप इस प्रकार है—

जयसिंह सूरि के पास दंताणां के द्रोण श्रेष्ठी के पुत्र "गोद्र" ने दीक्षा स्वीकार की और शनैः शनैः आगमाभ्यास मे वह प्रवीण होने लगा। एकदा दशवैकालिक सूत्र के अर्थ का विचार करते हुए उपाश्रय मे सचित जल के भरे हुए घड़े देखकर वे गुरु से बोले—"भगवन्! हम श्रमण कहते क्या हैं और करते क्या हैं?"

गुरु ने कहा—"समय का प्रभाव है।"

गुरु की अनुमति से उन्होने शुद्ध मार्ग अंगीकार किया, जिससे गुरु ने उनको उपाध्याय पद प्रदान कर विजयचन्द्र नाम रखा।

फिर तीन शिष्यो के साथ, गुरु की आज्ञा से उन्होने क्रिया का उद्धार प्रारम्भ किया। सिद्धान्तानुसार उपदेश देते और ४२ दोषरहित आहार मिले तो ही स्वीकार करना ऐसी प्रतिज्ञा की। एक वार शुद्ध आहार नही मिलने से ३० दिन विना आहार के ही बीत गये फिर भी वे शुद्ध मार्ग से विचलित नही हुए। फिर पावागढ जाकर सागारी अनशन स्वीकार किया।

कहा जाता है कि उस समय चक्रेश्वरी और पद्मावती देवी सीमंधर स्वामी को वदन करने विदेह क्षेत्र मे गई हुई थी। उन्होने सीमधर स्वामी के मुख से विजयचन्द्र के शुद्ध क्रियाधारक रूप की प्रशंसा सुनी तो दर्शन करने आई और वदना कर बोली—महाराज! सीमधर स्वामी ने जैसा कहा, वैसे ही आप है। अत हे पूज्य वर! आप अपने गच्छ का "विधि पक्ष"

नाग प्रकट कर के विचरो। भालेज नगर में आप को शुद्ध भिक्षा प्राप्त होगी।"

देवी के कथनानुसार विजयचन्द्र पावागढ़ से भालेज नगर गये और वहा शुद्ध आहार प्राप्त कर अनशन तप का पारण किया।

वहाँ से आप वेणप नगर गये और वहा के कोटि नामक व्यवहारी को भक्त बनाया। उपरोक्त दैवी घटना कहाँ तक सत्य है, यह विचारणीय है।
कोटि सेठ एक बार पाटण गया और प्रतिक्रमण मे वदना देते समय मुंहपति के स्थान पर वस्त्र के छोर से वदना की। कुमारपाल भूपाल ने गुरु से इसका कारण पूछा तो गुरु ने विधि पक्ष की बात कही।

इस पर कुमारपाल ने वस्त्राचल से वदना करने के कारण विधि पक्ष का नाम "आचलक" प्रचलित किया। इस प्रकार स० १२१३ में इस गच्छ की उत्पत्ति हुई और विजयचन्द्र को आचार्य स्थापित किया।[1]

आगमिक (आगमियां) गच्छ—पूनमिया गच्छ के श्री शीतलगुण सूरि और देवभद्र सूरि ने आचल गच्छ मे प्रवेश किया, फिर उसे भी त्याग कर उन्होने अपना स्वतन्त्र मत चलाया। उन्होने क्षेत्र देवता की स्तुति का निषेध किया, इस प्रकार की कई नूतन प्ररूपणाएं की और अपने मत का नाम "आगमिक गच्छ" रखा। इस गच्छ की उत्पत्ति सं० १२५० में होना कहा जाता है। इस मत मे भी बहुत से शक्तिशाली आचार्य हुए।[2]

॥ लावणी ॥

विक्रम शत द्वादश पिच्चासी मांही,
गच्छ तपा की उत्पत्ति कही भाई।
लूंका, कड़वा, बीजामत हुए नाना,
आगे इनका परिचय देखो छाना।
किया क्रिया उद्धार विमल यशधारी ॥ देकर० ॥१३५॥

---

१. तपा गच्छ पट्टावली पृ० १४४-४५।
२. तपा गच्छ पट्टावली, पृ० १४६

तपा गच्छ की उत्पत्तिः – जगत् चन्द्र सूरि ने अपने गच्छ की शिथिल क्रिया देख कर गुरु आज्ञा से चैत्र गच्छीय देवचन्द्र उपाध्याय के सहयोग से क्रिया उद्धार किया। उन्होंने इस कार्य के लिये असाधारण त्यागवृत्ति और शास्त्रोक्त शुद्ध क्रिया स्वीकार की।

दिगवर आचार्यो के साथ वाद मे विजय पाने से मेवाड के महाराणा जेत्रसिंह ने जगत् चन्द्र सूरि को "हिरला" इस उपाधि से विभूपित किया। उन्होंने आजीवन आर्यविल तप की कठोर साधना करते हुए जव १२ वर्ष पूर्ण किये तव महाराज ने उनको "तपा" इस विरुद से सम्मानित किया। इस प्रकार तव से अर्थात् वि० सं० १२८५ से तपागच्छ की उत्पत्ति हुई।

जगत् चन्द्र के शिष्य विजयचन्द्र से वृद्ध पौशालिक तपागच्छ की और देवेन्द्र सूरि से लघु पौशालिक तपागच्छ की उत्पत्ति हुई।

विजयचन्द्र सूरि पीछे से शिथिलाचारी वन गये, जब कि देवेन्द्र सूरि शुद्ध क्रिया का पालन करते हुए पट्टधर वने और चिरकाल तक जिन शासन का अच्छी तरह उद्योत करते रहे।

विजयचन्द्र सूरि के समय मे साधु को वस्त्र की पोटलिका रखने, नित्य प्रति विगय सेवन करने और तत्काल किये हुए उष्ण जल के ग्रहण करने की छूट चालू हो गई थी।

इस प्रकार वि० सं० १२८५ में तपागच्छ की उत्पत्ति वतलाई गई है।

फिर सोलहवी सदी मे लोकागच्छ, कड़वा मत, वीजामत आदि अनेक गच्छ हुए। लौकाशाह और आनन्द विमल सूरि आदि ने क्रिया उद्धार कर निर्मल यश कीर्ति प्राप्त की ॥१३५॥

॥ लावणी ॥

चतुर्दशी का पर्व शास्त्र नही कहता,
पूनमियां गण का मत युक्त ठहरता।

सार्ध पूनमियां फल पूजा नहीं माने,
देवभद्र से आगमिया मत जाने।
गण परिवर्तन की मति उसने धारी ।।दे कर०।।१३६।।

अर्थ —शास्त्र के अनुसार पूर्णिमा के दिन ही पाक्षिक प्रतिक्रमण करने का उल्लेख है, चतुर्दशी का नही । इसलिये पूनमिया गच्छ का पूर्णिमा को पर्व करने का विचार युक्तिसंगत ठहरता है । सार्ध पूनमिया के अनुसार प्रतिमा की पूजा मे फल का उपयोग उचित नही माना जाता । देवभद्र सूरि से आगमिया मत की उत्पत्ति हुई । ये आगमानुकूल अनुष्ठान मे ही श्रद्धा रखते थे । सयोग पा कर इनके मन मे गण परिवर्तन की वात उठी और तदनुकूल गच्छ की स्थापना की गई ।।१३६।।

सार्ध पूनमिया गच्छ की उत्पत्ति—इस गच्छ की उत्पति स०१२३६ मे वताई गई है ।

राजा कुमारपाल ने एक वार जव हेमचन्द्र आचार्य से कहा—"पूनमिया गच्छ वाले जैनागम के अनुसार चलते है या नही, मुझे इसकी जाच करनी है ।'

तव आचार्य ने उनको वुलाया, कुमारपाल द्वारा पूछे गये प्रश्नो का ठीक तरह से उत्तर न देने के कारण राजा ने उन साधुओ को अपने देश से दूर चले जाने को कहा । कुमारपाल के वाद पूनमिया गच्छ के आचार्य सुमतिसिंह पाटण आये । उस समय गच्छ का नाम पूछने पर उन्होने कहा हम सार्धपूनमिया गच्छ के है । इस गच्छ वालो की विशेषता यह है कि वे जिनमूर्ति की फल से पूजा नही करते । तव से सार्ध पूनमिया मत प्रकट हुआ ।

।।लावणी।।

मुनि चन्द्रसूरि ने गण का नाम चलाया,
विगयायाग जीवन भर पूर्ण निभाया ।
सुमतिसिंह से सार्धपूनमिया कहते,
वारह सौ पचास आगमिया चलते ।
क्षेत्र देव की पूजा नही स्वीकारी ।। लेकर० ।।१३७।।

अर्थः—मुनि चन्द्र सूरि ने जीवन भर पांच विगयो का त्याग किया, वे मात्र छाछ पीकर ही जीवन चलाते रहे। इन्होने गण का नाम चलाया। आचार्य सुमतिसिह से सार्धपूनमिया मत का प्रचलन हुआ। सं० १२५० मे आगमिक मत का आरभ हुआ। ये क्षेत्र देव की पूजा नही मानते है। आगमानुकूल विचार होने से इस गच्छ का नाम "आगमिया" कहा जाता है ॥१३७॥

॥लावणी॥

खरतर गच्छ के जिनदत्त जानो भाई,
बारह सौ अरु चार साल बतलाई।
हुए प्रभावक देव सिद्ध कर लीना,
स्वर्ग मिला अजमेर शान्तिरस भीना।
विधि पख ने मुंहपत्ती दीनी डारी॥ लेकर० ॥१३८॥

अर्थ —पट्टावली के अनुसार सं० १२०४ में जिनदत्त सूरि से खरतर गच्छ की उत्पत्ति वतलाई गई है परन्तु प्रभावक चरित्र के अनुसार जिनेश्वर सूरि के द्वारा खरतर गच्छ की उत्पत्ति मानी जाती है। इस गच्छ मे जिनदत्त सूरि वड़े प्रभावक और दैवी-सिद्धि वाले आचार्य थे। इनका स्वर्ग वास अजमेर मे हुआ माना जाता है। विधि पक्ष ने मुंहपत्ती के वदले वस्त्रांचल से यतना कर के "आंचल गच्छ" नाम प्राप्त किया जो प्रसिद्ध है ॥१३८॥

॥लावणी॥

जगच्चन्द्र ने आजीवन तप कीना,
जैत्रसिह ने तपा विरुद दे दीना।
सोमप्रेम ने जल कुंकण वंद कीना,
मरु में दुर्लभ जल से भ्रमण न कीना।
शाखा इसकी कहूं जरा विस्तारी॥ लेकर० ॥१३९॥

अर्थः—जगत् चन्द्र सूरि ने आजीवन आयविल तप किया, जिससे

महाराणा जैत्रसिह ने इनको "तपा" इस विरुद से अलकृत किया। आचार्य सोमप्रभ ने अपकाय की विराधना के कारण जल कुंकण में और शुद्ध अचित जल का सयोग दुर्लभ होने से मरुदेश मे साधुओ का विचार निपिद्ध कर दिया था।

आगे इसकी शाखा का विस्तार से परिचय दिया जाता है ॥१३९॥

॥ लावणी ॥

शिथिल वृत्ति का जोर बढ़ा शासन में,
विजयचन्द्र भी मिले शिथिल यतिजन में।
त्यक्त-शाल में रहे वर्ष द्वादश लग,
देवभद्र ने धरा नही उसमे पग।
पक्ष लगे उनके भी कई नर नारी ॥ देकर० ॥१४०॥

अर्थः—जगत् चन्द्र के वाद शिथिलाचार का जोर वढ़ता गया। विजयचन्द्र सूरि स्वय उन शिथिल साधुओ के सहायक हो गये अर्थात् उनमें मिल गये।

देवेन्द्र सूरि को इस वात की खवर होने पर वे मालवा से खंभात आये. पर विजय चन्द्र सूरि उनको वदन करने नही गये। तव देवेन्द्र सूरि ने कहलाया— "तुम १२ वर्ष तक एक ही स्थान पर एक ही उपाश्रय मे कैसे ठहरे हो।"

उन्होने उत्तर मे कहा—"हम तो निर्ममी और निरहंकारी है।"

उनके उपेक्षा पूर्ण वचन से देवेन्द्र सूरि वहाँ नही ठहर कर "लघु पोशाल" मे ठहरे, इसलिये वे "लघु पोशालिक" कहलाये।

जो लोग उनके अनुयायी हुए वे लघु पोशालिक और जो विजयचन्द्र के भक्त रहे वे वृद्ध-पोशालिक कहलाये। इस प्रकार दो शाखाएँ प्रगट हो गई ॥१४०॥

॥लावणी॥

विजयचन्द्र ने खुल्ले बोल कराये,
साध्वी लाया अशनादिक बहराये।

त्यक्त-शाल में रह खुल्ली करवाई,
देवभद्र से उनकी हुई जुदाई।
पोशालिक गरा की यह बात उघारी ॥ लेकर० ॥१४१॥

अर्थ.—आचार्य विजयचन्द्र ने आचार मार्ग मे कई वातो की छूट दी। उनके ११ वोलो मे वस्त्र की गाठ बाँधकर रखना, नित्य विगय वापरना, वस्त्र धोना, साध्वियो का लाया हुआ आहार लेना आदि मुख्य है।

छोडी हुई पोशाल को उन्होंने खुल्ली करवाई तव से देवेन्द्र सूरि और देवभद्र से उनका सम्वन्ध अलग हो गया।

पोशालिक मत की यह खुली वात, तपागच्छ पट्टावली मे स्पष्ट देखने मे आती है ॥१४१॥

आचार्य धर्मघोष

॥ लावणी ॥

सदी तेरवी का यह हाल सुनाया,
शिथिल देख आंचल तप मत प्रगटाया।
बढ़ा जोर यतियो का फिर लो लेखो,
धर्मघोष ने शाकिनी वश की देखो।
उज्जैनी में योगी हिम्मत हारी ॥ लेकर० ॥१४२॥

अर्थ —विक्रम की तेरहवी सदी की यह घटना है। शिथिलाचार को वढते देख जयचन्द्र सूरि के शिष्य विजयचन्द्र सूरि ने क्रिया-उद्धार किया और विधि पक्ष एव आचल गच्छ नाम स्वीकार किया।

फिर देवेन्द्र सूरि के पश्चात् धर्मघोप सूरि हुए। उनका समय मत्र-तंत्र का युग था। मन्त्र के प्रभाव से यतियो का जोर वढ रहा था। यति लोग विभिन्न स्थानो पर अपनी गादियाँ भी कायम कर चुके थे और वे मत्र-तन्त्र के वल से समाज मे प्रभाव जमाने मे विशेप प्रयत्नशील थे।

उज्जयनी मे एक योगी का अत्यन्त जोर था। उसकी अनुमति के

विना कोई साधु वहा नही रह सकता था। धर्मघोप सूरी को यह अच्छा नही लगा। उनको संवेगशील साधुओ का विहार नगर मे बाधारहित करना था। अत वे अपने मुनि परिवार सहित उज्जयनी आ पहुंचे।

योगी को पता चला तो वह बहुत ही क्रुद्ध हुआ और किसी भी तरह साधुओ को परेशान करने का उसने निश्चय किया।

सहसा भिक्षा के लिये जाते हुए श्रमण साधुओ से उसकी भेट हुई। उसने पूछा—"क्या तुमको यहाँ रहना है ? कितने दिन रहना चाहते हो ?"

श्रमण साधुओ ने अपना उज्जयनी मे स्थिरवास करने का विचार प्रकट किया। तो योगी ने अपना मान भग होते देख कर मत्र शक्ति द्वारा उपाश्रय मे बहुत से चूहो की रचना कर दी।

इधर उधर चहुँ ओर चूहो को दौडते देख कर श्रमण साधु भयभीत हुए और इधर उधर होने लगे तो गुरु ने उन्हे आश्वस्त किया और मत्र बल से एक घडे को अभिमन्त्रित किया। फलस्वरूप योगी अपने स्थान पर ही पीडा अनुभव करने लगा और अन्त मे उसने असह्य वेदना होने से गुरु चरणो मे आकर क्षमा याचना की।

आचार्य धर्मघोष ने दूसरे नगर मे भी मंत्र बल से शाकिनियो के उपद्रव का निवारण किया।

इस प्रकार योगी को प्रभावहीन कर आपने उज्जयनी का विहार साधुओ के लिये निरापद कर दिया ॥१४२॥

॥लावणी॥

तेरह सौ बत्तीस के लगभग जानो,
सोमसूरि ने भीलड़ी वर्षा ठानो।
भीमपल्ली का भंग जान चल दीने,
प्रथम पूर्णिमा चले हानि से भीने।
रहे कई आचार्य सहे दुख भारी॥ लेकर०॥१४३॥

अर्थ :—सवत् १३३२ के लगभग की बात है कि सोमभद्र सूरि ने

भीमपल्ली ग्राम मे वर्षावास किया। उस समय उन्हे ज्ञान बल से मालूम हुआ कि इस ग्राम का निकट भविष्य मे ही नाश होने वाला है।

वहां पर अन्य गच्छ के भी ग्यारह आचार्य थे। उस वर्ष कार्त्तिक मास दो थे किन्तु आचार्य ने संघहानि का कारण देख कर प्रथम कार्त्तिक की चतुर्दशी को ही प्रतिक्रमण कर भीमपल्ली से विहार कर दिया। पर जो उपेक्षा कर वहा रहे उनको भयंकर कष्ट का सामना करना पडा ॥१४३॥

॥लावणी॥

धर्मघोष जगम विष-पीड़ा जानी,
सघ-विनय भारी में बेल पिछानी।
जीर्ण द्वार में आगत जन से लीजे,
दर्दहरण को घिस कर लेप करीजे।
आजीवन तज विगय शुद्धि की भारी ॥ लेकर० ॥१४४॥

अर्थ—आचार्य धर्मघोष को संयोगवश एक बार जगम विष की पीड़ा हो गई। जैसे जैसे विषधर का जहर चढ़ता गया वैसे वैसे शनै शनै आचार्य को मूर्च्छा आने लगी। इससे चिन्तित होकर संघ के प्रमुख लोग उनके उपचार के लिये विचार करने लगे। औषधोपचार से भी जब विष का उपशमन नही हुआ तो सघ ने गुरु चरणो मे अपनी चिन्ता व्यक्त की।

देह पर निर्ममत्व भाव होने पर भी आचार्य ने सघ के आग्रह से एक उपाय बतलाया और कहा—"नगर के बाहर से एक पुरुष काष्ठ की भारी लेकर आ रहा है, उसमे एक विषापहारिणी बेल है, जिसको घिसकर लगाने से कैसा भी विष हो उतर जाता है।"

संघ ने वैसा ही किया। काष्ठ का भार लेकर आने वाले पुरुष से वह बेल प्राप्त की और आचार्य के शरीर पर उसका लेप किया जिससे शरीर स्वस्थ हुआ।

आचार्य ने उस एक बेल के उपयोग रूप सूक्ष्म दोष के प्रतीकार हेतु

सदा के लिये विगय मात्र का त्याग कर दिया । यह आत्मार्थीपन का वेजोड उदाहरण है ॥१४४॥

॥लावणी॥

सोमसुन्दर ने शिथिल देख यतिगण को,
किये नियम शासन उत्थान करण को ।
चौदह सौ सत्तावन समय पिछानो,
यत्न करत भी बढ़ी चरण की हानो ।
सदी सोलवी की घटना कहुं सारी ॥ लेकर० ॥१४५॥

अर्थ—आचार्य सोमसुन्दर सूरि के समय मे दिगम्बर सम्प्रदाय का प्रचार वढ़ा हुआ था । ईडर मे तो दिगंवर भट्टारको की गद्दी भी कायम हो चुकी थी । जव सोमसुन्दर को आचार्य पद प्रदान किया तो उन्होने यतिगत के आचार की शिथिलता देख कर अपने साधु समुदाय को शिथिलाचार से बचाने के लिये कुछ नियम मर्यादा-पट्ट के रूप से स्थिर किये ।

संवत् १४५७ के लगभग उन्होने संघरक्षा का यह प्रयत्न किया, फिर भी चरित्र-धर्म की समय समय पर हानि होती रही ।

अव सोलहवी सदी की कुछ घटनाएं प्रस्तुत की जा रही हैः—॥१४५॥

॥लावणी॥

अष्टोत्तर पनरह मे लोका आया,
दयाधर्म ही सच्चा मत वतलाया ।
पूजा पोषा दानादिक नहीं माने,
गच्छवासि मिल विविध दोष दे छाने ।
देव हमारे वीतराग अविकारी ॥ लेकर० ॥१४६॥

अर्थः—संवत् १५०८ मे लोकाशाह प्रकट हुआ । उसने दया धर्म को ही सच्चा धर्म वतलाया ।

गच्छवासी लोग उनके विविध दोष बतलाते और उनका विरोध करते। समाज में यह भ्रान्ति फैलाई जाने लगी कि लोकाशाह पूजा, पौषध और दान आदि नही मानता। विरोध भाव से इस प्रकार के कई दोष विरोधियो द्वारा लगाये गये किन्तु वास्तव मे लोकाशाह धर्म का या व्रत का नही अपितु धर्म विरोधी ढोंग-आडम्बर का निषेध करता था।

उसका मत था कि हमारे देव वीतराग एव अविकारी है, अतः उनकी पूजा भी उनके स्वरूपानुकूल ही आडम्बर रहित होनी चाहिये ॥१४६॥

॥लावणी॥

कहे विरोधी व्रत पोषा नही माने,
पर यह कहना है जनगण बहकाने।
क्रियावाद में आडम्बर जो छाया,
लोका ने उसको ही दूर हटाया।
कबीर ने भी की यही ललकारी॥ लेकर ॥१४७॥

अर्थः—विरोधी लोगो का यह कथन कि लोकाशाह व्रत, पौषध आदि को नही मानता, मात्र धर्म प्रेमी जनसमुदाय को बहकाने के लिये था। वास्तव मे लोकाशाह ने व्रत या तप का नही किन्तु धर्म मे आये हुए बाह्य क्रियावाद यानि आडम्बर आदि विकारो का ही विरोध किया था। जैसा कि कबीर ने भी अपने समय में बढ़ते हुए मूर्तिपूजा के विकारो के लिये जन समुदाय को ललकारा था। यही बात लोकाशाह ने भी कही थी। वीतराग के स्वरूपानुकूल निर्दोष भक्ति से उनका कोई विरोध नही था ॥१४७॥

उनका मन्तव्य इस प्रकार है -

॥लावणी॥

दया, दान, पूजा, पौषध की करणी,
आडम्बर उजमणा की नही वरणी।

विकार का परिशोध किया था उसने,
सत्करणी निर्दोष बताई उसने ।
सद् गुण पूजा ही भव तारणहारी ।। लेकर० ।।१४८।।

अर्थ.—लोकाशाह ने दया, दान, पूजा और पौषध की करणी मे आडम्बर एवं उजमणा आदि की प्रणाली को ठीक नही माना । उन्होंने कर्मकाण्ड मे आये हुए विकारो का शोधन किया और सर्वसाधारण जन भी सरलता से कर सके,वैसी निर्दोष प्रणाली स्वीकार की । उन्होंने पूजनीय के सद्गुणो की ही पूजा को भवतारिणी मानी । आरम्भ को धर्म का अ ग नही माना क्योकि पूर्वाचायो ने "आरम्भे नत्थि दया" इस वचन से हिसा रूप आरम्भ मे दया नही होती यह प्रमाणित किया ।।१४८।।

॥लावणी॥

शास्त्र वाचते जगा बोध मन माहीं,
नाम, रूप या द्रव्य की पूजा नाही ।
सद्गुण ही पूजा का कारण मानो,
परंपरा में बढ़ा रोष मत छानो ।
महिमा इसकी हुई जगत् मे जहारी ।। लेकर० ।।१४९।।

अर्थः—शास्त्र का वाचन करते हुए लोकाशाह को बोध हुआ । उन्होंने समझा कि वस्तु के नाम, रूप या द्रव्य पूजनीय नही है । पूजनीय तो वास्तव मे वस्तु के सद्गुण हैं । लोकाशाह की इस परम्परा विरोधी नीति से लोको मे रोष बढ़ना सहज था । गच्छवासियो ने शक्ति भर इनका विरोध किया पर ज्यो ज्यों विरोध बढता गया त्यो त्यो उनकी ख्याति व महिमा भी बढती गई । जो अल्पकाल मे ही देश-व्यापी हो गई । गुजरात. पजाव, उत्तर प्रदेश और राजस्थान मे चारो और लोकागच्छ का प्रचार व प्रसार हो गया ।।१४९।।

लोकाशाह के मतव्य की उपादेयता इसी से प्रमाणित है कि अल्पतम समय मे ही उनके विचारों का सर्वत्र आदर हुआ ।

॥लावणी॥

प्रथम सयमी हुए भाण ऋषि नामी,
अनुशासन अरु दृढ़ सयम के कामी।
परिग्रहधारी से श्रावक थे रूठे,
सत्य मार्ग सुन भविजन सम्मुख ऊठे।
लोंकागच्छ की विमल कीर्ति विस्तारी ॥लेकर०॥१५०॥

अर्थः—लोकाशाह के विचारो से प्रभावित हो कर प्रथम भानाजी दीक्षित हुए। वे धर्मानुशासन और दृढ सयम के वडे प्रेमी थे। लोकाशाह दीक्षा के लिए ऐतिहासज्ञो मे मतभेद है। कुछ उनका दीक्षित होना मानते है तो कुछ दीक्षित नही मानते पर गहरी गवेषणा से प्राप्त सामग्री मे लोकाशाह की दीक्षा का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

संभव है १५०८ मे उनके विचारो मे जो क्रान्ति आई, उसने स० १५२४ या १५२८ में मूर्त्त रूप धारण किया हो। भाणजी आदि ने स० १५३१ मे मुनिव्रत धारण किया। परिग्रहधारी यतियो से श्रावक-समाज पूर्ण रूप से असंतुष्ट था अतः लोकाशाह का सत्य मार्ग सुनकर सब उस ओर झुकने लगे और लोका गच्छ की निर्मल कीर्ति देश विदेश में फैलने लगी ॥१५०॥

॥ लावणी ॥

रूप, जीवादि आठ पाट शुद्ध चाले,
महिसा पूजा मे हुए फिर मतवाले।
निमित्त का उपयोग करण ऋषि लागे,
राज-मान आडम्बर मे मन जागे।
आत्मार्थी सतो ने क्रिया उधारी॥ लेकर० ॥१५१॥

अर्थः—लोकाशाह का लक्ष्य शुद्ध श्रमण परम्परा मे आये हुए विकारो को दूर करने का था नूतनमत निर्माण की ओर उनका लक्ष्य नही था। यही कारण है कि गच्छ की सुव्यवस्था, मर्यादा एव उसके परिचालन

के लिये उनकी कोई खास योजना व रूपरेखा उपलब्ध नही होती केवल श्रद्धा प्ररुपणा के बोल ही उपलब्ध होते हैं। ऋषि भाणाजी से लेकर ऋषि रूपजी और ऋषि जीवाजी तक आठ पाठ तक शुद्ध संयम का आराधन चलता रहा, फिर धीरे २ लोका गच्छ मे भी शिथिलाचार का प्रवेश होने लगा। महिमा पूजा की ओर उनका भुकाव बढा और ऋषि लोग ज्योतिष, निमित्त आदि का उपयोग करने लगे। श्री पूज्य शिवजी के समय में राजकीय सम्मान मिलने पर उनमे भी नगर प्रवेश पर उत्सव-स्वागत आदि का आडम्बर चल पडा। परिणामस्वरूप आत्मार्थी सतो ने शासनहित की चिन्ता से फिर क्रिया उद्धार का मार्ग स्वीकार किया ॥१५१॥

॥लावणी॥

जीव, धर्म, लवजी ने जोर लगाया,
धर्मदास, हरजी भी आगे आया।
सदी सतरवीं मे यह जोत जलाई,
सोलह मे फिर धर्म ने उसे बढ़ाई।
शिष्य निन्नाणु नाण चरण के धारी,
परम्परा अब सुन लो न्यारी न्यारी ॥ लेकर० ॥१५२॥

अर्थ —लोकागच्छ मे से निकल कर श्री जीव ऋषि, श्री धर्मसिह जी, श्री लवजी ऋषि और श्री हरजी ऋषि ने शुद्ध शास्त्र सम्मत क्रिया के पालन मे जोर लगाया। उन्होने १७ वी सदी के अन्त मे शुद्ध व शास्त्र सम्मत सयम की ज्योति जगाई और स० १७१६ मे फिर श्री धर्मदासजी महाराज ने इस निर्मल ज्योति को और आगे बढाया। उनके तप, सयममय जीवन से प्रभावित होकर उनके निन्नाणू (९९) शिष्य हुए जो अच्छे विद्वान्, आचारनिष्ठ और प्रभावशाली थे। इनकी पृथक् पृथक् परम्परा इस प्रकार है ॥१५२॥

॥लावणी॥

जीवराज मुनि की गुणगाथा गाऊं,
हुआ शिष्य विस्तार पूर्ण बतलाऊं।

लालचन्द मुनि के परिवार सुहाये,
नानक सामीदास, अमर प्रगटाये।
हुए संत गुणवन्त ज्ञान तपधारी ।। लेकर० ।।१५३।।

अर्थ —क्रिया उद्धारक पूज्य जीवराजजी महाराज की गुणगाथा गाकर उपलब्ध सामग्री के अनुसार उनकी शिष्य परम्परा के विस्तार को प्रस्तुत करता हूँ। श्री जीवराजजी के शिष्य पूज्य लालचन्दजी के परिवार मे पूज्य दीपचन्दजी से एक नानकरामजी और दूसरी सामीदासजी की परम्परा चली। फिर पूज्य लाल चन्दजी के शिष्य अमरसिहजी की दूसरी परम्परा प्रकट हुई।

हर एक परम्परा मे अच्छे त्यागी, तपस्वी और प्रतिभा-सम्पन्न सत हुए ।।१५३।।

॥लावणी॥

धन्ना ऋषि से शीतल कुल प्रगटाया,
नाथूराम गण पंचनदीय सुनाया।
कुलोपकुल के हुए संत कई नामी,
किया बड़ा उपकार नमूं सिर नामी।
पट्टावली मे शाखा कई विस्तारी ।। लेकर० ।।१५४।।

अर्थः—पूज्य जीवराजजी के द्वितीय शिष्य धनजी महाराज से पूज्य शीतलदासजी की परम्परा चालू हुई। श्री धन्ना ऋषि के द्वितीय शिष्य श्रीमनजी से पूज्य नाथूरामजी की परम्परा चली, इस परम्परा का हरियाणा एव पंजाब मे अधिक प्रचार रहा। इसके अतिरिक्त कई कुल और उपकुल की परम्पराएं चली और कई प्रभावशाली संत हुए जिनके महान् उपकार का स्मरण कर हम नतमस्तक हुए विना नही रह सकते। शाखाओ का विशेप विस्तार पट्टावली से समझना चाहिये ।।१५४।।

॥लावणी॥

धर्मसिंह मुनि लोका गच्छ से आये,
दरियापीर को अपने वश मे लाये।

शिवजी के गए चरित्र उजारा,
दरियापुरी के नाम वश विस्तारा ।
आठ कोटि से सामायिक लो धारी ॥ लेकर० ॥१५५॥

अर्थः—पूज्य जीवराजजी के वाद क्रियोद्धारक पूज्य धर्मसिहजी हुए। आपने लोकागच्छीय श्री पूज्य शिवजी की अनुमति से दरिया पीर की दरगाह मे रात्रिवास कर वहां के पीर के उपसर्गो को सहन करके अन्त मे उसे अपना वशवर्ती बना लिया। इससे उनके उत्कृष्ट सन्त बल की बडी ख्याति हुई। एवं नगर के मुख्य द्वार दरिया पोल पर अधिकतर धर्म उपदेश करते रहने से आपकी परम्परा दरियापुरी संप्रदाय के नाम से कही जाने लगी। पूज्य शिवजी के गच्छ से निकल कर आपने क्रिया उद्धार किया। आपका मतव्य था कि श्रावक को सामायिक मे आठ कोटि से ही पच्चखांण करना चाहिये। अत आपकी परम्परा आठ कोटि के नाम से भी पुकारी जाने लगी ॥१५५॥

॥लावणी॥

ऋषि लवजी का फैला नाम सवाया,
कंबापुरी मे क्रिया उद्धार कराया।
वोरा वीरजी को प्रतिवोध दिलाया,
कष्ट सहन कर भी नहिं कदम हटाया।
गुर्जर मे खंभात गच्छ यश धारी ॥ लेकर० ॥१५६॥

अर्थ—धर्मसिहजी के समकालीन एक क्रिया उद्धारक लवजी भी हुए। क्रिया उद्धारको मे इनका नाम खूब फैला।

कहा जाता है कि सूरत के वोहरा वीरजी का पत्र पाकर खंभात के नवाव ने इनको तीन दिन तक अपने यहाँ विठाये रखा। फिर भी ये अपने विचार से विचलित नही हुए। फलस्वरूप वेगम का मन पिघला और उसके कहने से आप मुक्त कर दिये गये।

लवजी ने अपने दो साथी मुनियो के साथ कवापुरी (खंभात) मे

क्रिया उद्धार किया । कष्ट सहकर भी आप पीछे नही हटे । इससे प्रभावित होकर वोहरा वीरजी आपके भक्त हो गये । सं० १७१० का चातुर्मास आपने सूरत मे ही किया । आपकी परम्परा गुजरात मे खभात गच्छ के नाम से प्रसिद्ध है ।।१५६।।

||लावणी||

सोम कान्ह ऋषि मूल पुरुष हुए नामी
तारा ऋषि का वंश गुर्जरारामी ।
अमरसिंह पजाब गच्छ के मुखिया,
रामरतनजी भी थे गुण के दरिया ।
भिन्न कुलो मे मूल न जाय विसारी ।। लेकर० ।।१५७।।

अर्थ :—पूज्य लवजी के प्रमुख शिष्य ऋषि सोमजी और ऋषि कानजी हुए । तारा ऋषि का परिवार गुजरात मे रहा और काला ऋषि का परिवार मालवा मे विचरता रहा ।

पूज्य सोमजी के शिष्य हरिदासजी से पंजाव परम्परा चली । जो पूज्य अमरसिहजी और पूज्य रामरतनजी के नाम से प्रसिद्ध हुई । इस प्रकार एक ही मूल से विभिन्न कुल निकल पडे ।।१५७।।

|| लावणी||

लवजी के उद्धार ने क्रांति मचाई,
गच्छवासी ने अपनी आण फिराई ।
स्थानाशन का निषेध घोषित कीना,
भग्न गेह में मुनि ने डेरा दीना ।
ढूढ़क ऐसा कहन लगे नर नारी ।। लेकर० ।।१५८।।

अर्थ.—लवजी के क्रिया उद्धार से गच्छवासियो मे वडी खलवली मची । उन्होने इनके विरुद्ध प्रचार कर आहार देना, उपाश्रय देना वन्द कर दिया । स्थान नही मिलने से लवजी अपने संतो सहित सूने मकान मे

ठहरे, जिससे लोग उन्हे ढूढिया कहने लगे। मुनि ने द्वेषभाव से कहे गये कथन को भी सुलट भाव से लिया और बोले, "भाई! ठीक है, हमने ढूढते २ सत्य पाया इसलिये ढूढिया कहते हो, सो सही ही है।"

इस प्रकार "ढूढक" और दूसरे साधु-मार्गी के नाम से सम्प्रदाय प्रसिद्ध हुआ ॥१५८॥

॥ लावणी ॥

हरजी से कोटा समुदाय कहाया,
दौलतरामजी मुख्य हुए मुनिराया।
हुक्मीचन्दजी पौत्र शिष्य कहलाये,
पूज्य जवाहर, मन्ना नाम धराये।
हुए प्रभावक सत प्रदेश विहारी ॥ लेकर० ॥१५९॥

अर्थ—धर्मसिंह जी की तरह इनके समकालीन अमीपालजी, श्रीपालजी और हरजी ने भी गच्छ त्याग कर क्रिया उद्धार किया। पूज्य हरजी से कोटा परम्परा चालू हुई।

दौलतरामजी के शिष्य श्री लालचन्द जी से पूज्य हुक्मीचन्दजी की परम्परा चली। आगे चलकर पूज्य जवाहरलालजी महाराज और पूज्य मन्नालाल जी महाराज से इसके भी दो कुल चल पड़े। दोनो परम्पराओ में कई प्रभावशाली और उपदेशक सत हुए जिन्होने प्रान्त प्रान्त मे घूम कर धर्म प्रचार किया ॥१५९॥

॥लावणी॥

सोलह मे हुए धर्मदास अवतारी,
पोतिया वध को छोड़ लिया व्रत धारी।
धर्मदास के धन्नाजी बड़भागी,
मरुभूमि में हुए शिष्य सोभागी।
मूलचन्द मुनि ने गुर्जर भू तारी ॥ लेकर० ॥१६०॥

अर्थ—स० १७१६ मे धर्मदासजी महाराज ने पोतियाबंध परम्परा

को छोड़कर अहमदावाद मे मुनि दीक्षा ग्रहण की। आप वडे अवतारी पुरुष थे। आपके निन्यानवे शिष्यो मे प्रमुख शिष्य धन्नाजी वडे भाग्यशाली हुए। उनकी शिष्य परपरा मरुभूमि मे फलीफूली। इनके दूसरे शिष्य मुनि गूलचन्दजी ने गुजरात मे धर्म का उपदेश देकर भवी जनो का उद्धार किया। पूज्य मूलचन्दजी से निकलने वाले अन्य कुलोपकुल रूप संघाड़ो का परिचय इस प्रकार है ॥१६०॥

॥लावणी॥

कच्छ, सायला, गोडल गादी राजे,
वरवाला, लीवड़ी के गण अति छाजे।
नानी, मोटी पक्ष में कुल फैलाया,
मूल भेद नही इनमे कोई पाया।
हुवे सत कई विद्या वल के धारी ॥ लेकर० ॥१६१॥

अर्थः—कच्छ, सायला और गोडल आदि गद्दी के क्षेत्रो के कारण गद्दी पर विराजने वाले आचार्यो की परम्परा भी गाव के नाम से कच्छ संघाडा, सायला संघाडा और गोडल संघाडा आदि नाम से कही जाने लगी।

वरवाला और लीवडी संघाडा भी शोभायमान है। लीवड़ी के पूज्य श्री अजरामरजी स्वामी विशेष प्रभावशाली रहे। लीवडी आदि कुछ संघाड़ो मे नानी पक्ष मोटी पक्ष के उपकुल भी है पर इनमे कोई मौलिक भेद नही पाया जाता। व्यवस्था भेद एवं गुरु भक्ति के रूप मे ही इन संघाडो का प्रादुर्भाव हुआ प्रतीत होता है। इनमे कई विद्यावल सम्पन्न मुनिराज हुए शतावधानी श्री रतनचद जी, श्री मणिलालजी, श्री मोहनलालजी आदि इसी परंपरा के प्रख्यात संत हुए हैं। जिनकी महिमा आज भी विद्यमान है ॥१६१॥

॥लावणी॥

रामचन्द्र मुनि मालव भू को तारे,
मरुधर में भी कुछ मुनिगण विस्तारे।

मेद पाट में पृथ्वीचन्द मुनि गाजे,
पूज्य मनोहर यू० पी० में शुभ राजे।
धर्मदास के गरण की महिमा भारी ।।लेकर०।।१६२।।

अर्थः—पूज्य धर्मदासजी के तृतीय शिष्य श्री रामचन्द्रजी ने मालव क्षेत्र को पावन किया। पीछे इन के अनुगामी सतो में से कुछ का दीर्घ काल तक मरुधर प्रदेश मे विचरण रहा जो आज ज्ञानचन्दजी महाराज की परम्परा के नाम से प्रसिद्ध है।

चतुर्थ शिष्य श्री पृथ्वीचन्दजी मेवाड मे सुशोभित हुए। उनकी परम्परा का अधिकांश विस्तार मेवाड मे ही रहा।

पाचवे शिष्य पूज्य श्री मनोहरलालजी महाराज से एक सत परम्परा चली जो उत्तर प्रदेश के निकट क्षेत्रो मे विचरण करती रही। इस प्रकार धर्मदासजी महाराज के शिष्य गरण चहुं ओर फैले जिनकी आज भी वडी महिमा गाई जा रही है ।।१६२।।

पूज्य धन्नाजी महाराज की परम्परा से जो कुल उपकुल निकले उनका परिचय निम्न प्रकार है —

॥ लावरणी ॥

धन्नाजी का भूधर शिष्य सुभागी,
महातपस्वी शान्त पूर्ण वैरागी।
रघुपत, जयमल, कुशल पूज्य हुए नामी,
परम्परा तीनो की है अभिरागी।
भूधर वंश की महिमा अति विस्तारी ।।लेकर०।।१६३।।

अर्थः—पूज्य धन्नाजी के प्रमुख शिष्य भूधरजी वडे प्रतिभाशाली हुए। आप वडे तपस्वी, शान्त और पूर्ण वैराग्यवान् थे। भूधरजी के अनेक शिष्यो मे श्री रघुनाथजी, श्री जयमलजी और श्री कुशलजी मुख्य हुए। इन तीनो की शिष्य परम्परा आज भी उत्तम रीति से चल रही है। भूधर वंश की इन्होने वहुत महिमा फैलाई ।।१६३।।

॥ लावणी ॥

पूज्य रघु का शिष्य भीष्म हठ मतवाला,
अष्टादश पनरे में संशय डाला ।
रघुपत ने दो वर्ष तलक समझाया,
सतरे मे फिर गण से अलग कराया ।
दया दान में उनकी मत थी न्यारी ॥लेकर०॥१६४॥

अर्थः—पूज्य रघुनाथजी का एक शिष्य भीखमजी बडा हठी था। वह एक बार जो बात पकड लेता उसे हर तरह से उपयुक्त ठहराने का प्रयत्न करता। स० १८१५ मे उन्हे जैन सिद्धान्त के कुछ वचनो मे शंका हुई।

पूज्य रघुनाथजी ने उन्हे दो वर्ष तक सही सिद्धान्त समझाने का एवं उनकी शंकाओ का समाधान करने का प्रयत्न किया परन्तु उन्होने अपनी हठ नही छोडी।

फलस्वरूप पूज्य रघुनाथजी ने स० १८१७ मे बगडी गाव मे उनको अपने गच्छ से अलग कर दिया। पूज्य रघुनाथजी जीव बचाने और अनुकम्पा, दान मे पुण्य मानते थे, किन्तु भीखमजी के विचार इससे भिन्न थे। इन्ही भीखमजी द्वारा श्वेताम्बर तेरा पथ सम्प्रदाय प्रचलित हुआ ॥१६४॥

॥ लावणी ॥

बीस और दो शिष्य बड़े धी वाले,
कहन लगे जन बावीस टोला वाले ।
दया ,और गुण पूजा सब कोई माने,
देश और गुरुभेद से अलग पिछाने ।
अन्तर मे वत्सलता सब मे भारी ॥लेकर०॥१६५॥

अर्थः—पूज्य धर्मदासजी महाराज के बावीस प्रमुख शिष्य हुए जो बड़े बुद्धिमान् और प्रतिभाशाली थे। उनके २२ गणो को विरोधी लोग तिरस्कार भाव से बावीस टोला नाम से कहने लगे। पर सतो ने ज्ञान भाव से सोचा कि साधुओ का मार्ग अनुकूल-प्रतिकूल बावीस परीषहो को जीतने

का है अतः हमे अपना परिचय साधुमार्गो सम्प्रदाय या बावीस सप्रदाय के नाम से ही देना चाहिये ।

सभी सघाडे दया मे धर्म और गुण पूजा को मान्य करते थे देव गुरु और धर्म विषयक सबकी श्रद्धा भी समान थी । केवल प्रान्तभेद और गुरु भक्ति से अलग अलग मुखियाओ के नाम से बावीस सघाडे कहे जाने लगे । अ तर मे सबका एक दूसरे के साथ पूर्ण वात्सल्य भाव था ।।१६५।।

॥लावणी॥

बावीस परिषह जीतन हित मुनियोधा,
करे कर्म से युद्ध टाल कर क्रोधा ।
संप्रदाय बावीस कहाई जब से,
मुख्य पांच थे शाखाएं हुई तब से
चरणबिहारी बड़े धर्म उपकारी ।।लेकर० ।।१६६।।

अर्थ—बावीस परिषहो को जीतने के लिये मुनीश्वर रूपी योद्धा क्रोध पर विजय प्राप्त कर के कर्मो के साथ युद्ध करते है । जब से इन सतो की मण्डली को बावीस सप्रदाय कहा जाने लगा, तभी से इनकी मुख्य पाच शाखाए चल रही थी । सभी सन्त चरण विहारी और जिन धर्म के सच्चे प्रचारक थे ।।१६६।।

॥ लावणी ॥

अष्टादश शत दशम वर्ष शुभ आया,
पचेश्वर में मुनि जन प्रेम मिलाया ।
प्रमुख संत मिल मर्यादा बधवायी,
मास मधु की शुक्ल पंचमी आई ।
जिन शासन के हर्षित थे नर नारी ।। लेकर० ।।१६७।।
एक वर्ष के बाद मेड़ता नगरी,
पूज्य अमर, भूधर, कान्हा मुनिवर री ।
श्रमण सिंह सबने सबंध बढ़ाये,
दीप्त हुए गण सब ही पुण्य सवाये ।

अशुभ योग कब टूटी संधि हमारी ।।लेकर०।।१६८।।

अर्थः—सं० १८१० के शुभ वर्ष मे पचेवर ग्राम मे प्रमुख सतो का प्रेम मिलन हुआ । चार संप्रदाय के मुख्य मुनियो ने मिल कर वैपाख शुक्ला पंचमी को जैन मुनि के जीवन की कुछ सर्व मान्य सामान्य आचार संहिता तैयार की एव तदनुरूप कुछ मर्यादाएं वाध कर एक संगठन की भूमिका का निर्माण किया । इससे जिन शासन के सभी लोग परम प्रसन्न थे ।।१६७।।

एक वर्ष के वाद सं० १८११ की वैपाख कृष्णा दशमी को फिर मेड़ता मे पूज्य लालचन्दजी महाराज की परम्परा के पूज्य अमरसिहजी व दीपचन्दजी और पूज्य भूधरजी महाराज के साधु साध्वियो का राजस्थान मुनि मण्डल की ओर से एक संगठन कायम हुआ । इस प्रकार भारत वर्ष की प्रमुख संप्रदायो का एक विधि पूर्वक पुनः सगठन हुआ, जिसमे श्रमणी वर्ग भी साथ था । सभी गण इस संगठन से वड़े प्रसन्न थे । लेकिन यह प्रकृति का नियम है कि शुभ-योग एवं शुभ कार्य दीर्घकाल तक स्थिर नही रहते । तदनुसार न मालूम कव कहा और कैसे हमारा यह संगठन पुनः टूट गया कहा नही जा सकता । इतिहास की कडिया इस वारे मे मौन है ।।१६८।।

।।लावणी।।

सदी बीसवी से शुभ अवसर आया,
पर्व ऐक्य हित शुभ संदेशा लाया ।
श्रावकगण की चिन्ता गणी ने जानी,
मुनि मंडल का निर्णय लू गा मानी ।
सोहन गणि की सवने वार्ता धारी ।। लेकर० ।।१६९।।

अर्थः—वर्षावाद बीसवी सदी मे फिर ऐसा शुभ अवसर प्राप्त हुआ । पजाव के जैन समाज मे पक्खी, सवत्सरी जैसे पर्वो को एव पत्री व परम्परा को लेकर मतभेद चल रहा था । जिसे मिटाने के सम्वन्ध मे चर्चा हुई, लोग वड़े चिन्तित थे । उस समय पंजाव सम्प्रदाय के आचार्य पूज्य सोहनलाल जी महाराज ने श्रावको से कहा कि आप सव चिन्तित क्यो हैं ? स्थानक वासी समाज के मुनियो की एक वृहत्सभा का आयोजन किया जाय, साधु

सम्मेलन हो, उसमे जो निर्णय किया जायगा वह हमें मंजूर होगा। अनुभवी और उत्साही श्रावको ने भी पूज्य श्री का संकेत पाकर हर्षित हो ऐसा सम्मेलन करने का निश्चय किया ।।१६९।।

॥ लावणी ॥

शासनसेवा-रसिक श्रावक कई आये,
रतन, टेक, दुर्लभ सब के मन भाये।
मिलकर सबने पूरा जोर लगाया,
सौराष्ट्र धरा का भी सहयोग सवाया।
शासन हित सबकी थी शुभ तैयारी ।। लेकर० ।।१७०।।

अर्थः—शासन सेवा की भावना से कई श्रावक आगे आये और महासभा के माध्यम से इस सम्मेलन के लिये भारतीय स्तर पर काम चालू कर दिया। इसमें अमृतसर के लाला रतनचन्द, लाला टेकचन्द, जम्बू के दीवान विसनदास आदि, मोरवी के दुर्लभजी झवेरी, अमृतलाल रायचन्द, दक्षिण के मूथा मोतीलाल, कुन्दनमलजी फिरोदिया वकील, झवेरचन्द जादव और सौराष्ट्र के अन्य सदस्य भी पूरे सहायक थे ।।१७०।।

॥लावणी॥

प्रेमी श्रावक घूम घूम समझावे,
सब मुनियों की स्वीकृति प्राप्त करावे।
सम्मेलन हित आमंत्रण कई आवे,
अजयमेरु का सब ही भाग्य सरावे।
तीर्थ धाम सी बनी पुरी सब सारी ।। लेकर ।।१७१।।

अर्थः—प्रेमी श्रावको ने घूम घूम कर मुनिराजो को अपने विचार समझाये, सबने मुनि सम्मेलन की आवश्यकता को स्वीकार किया। पर यह सम्मेलन किस स्थान पर हो इसके लिये स्थान २ से निमन्त्रण आने लगे। व्यावर, अजमेर, दिल्ली आदि के निमत्रणो मे से अजमेर का निमन्त्रण स्वीकार किया गया। कच्छ, काठियावाड, गुजरात और पंजाब तथा

महाराष्ट्र आदि सुदूर क्षेत्रो के भी संकडो मुनि इस सम्मेलन में पधारे। सदियो से बिछुड़ी जैन शासन की ये धाराए एक स्थान पर आपस मे गले मिली। जैन श्रमण-सघ का यह सम्मेलन महान् तथा अभूतपूर्व था ।।१७१।।

॥ लावणी ॥

पर्व संवत्सरी एक करण मन धारा,
अजीव मत का पूर्ण किया निवटारा।
मालव गण के भेद का बड़ा झमेला,
देश देश में फैला असर विषैला।
जन गण में अनशन की थी तैयारी ।। लेकर० ।।१७२।।

अर्थः—सम्मेलन में तिथिपर्व की एकता के लिये लम्वी चर्चा के वाद यह निश्चय हुआ कि सम्पूर्ण स्थानकवासी समाज मे पक्खी-सवत्सरी एक दिन मनाई जावे। इसके लिये प्रमुख मुनियो एव विद्वान् श्रावको की एक संयुक्त "तिथि निर्णय समिति" का गठन किया गया।

मुनि कुदनमलजी आदि सतो मे अनाज को अजीव मानने की परम्परा थी। उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज के नेतृत्व मे इसकी विस्तृत चर्चा होकर सदा के लिये इस मतभेद को भी दूर कर दिया गया। सचित-अचित की समस्या पर भी विचार किया गया। संगठन के लिये पूज्य जवाहर लालजी महाराज के वीर संघ की योजना पर भी लंवी चर्चा हुई। पर हुक्मी चन्दजी महाराज की संप्रदाय के दोनो पक्षो का आपसी मतभेद इतना गहरा था कि उसने एकता के सारे प्रयत्नो को विफल कर दिया था। मुनि मिश्रीमलजी ने दोनो पक्षो को मिलाने के लिये अनशन भी कर रखा था। सम्मेलन मे भी इस प्रश्न ने मुख्य स्थान ले लिया। ।१७२।।

॥ लावणी ॥

वर्धमान-दुर्लभ ने काम संवारा,
पूज्य जवाहर ने भी मन को मारा।

पंचमुनि के निर्णय को स्वीकारा,
उभय पक्ष ने मिलकर किया आहारा।
तीर्थधाम सी नगरी हो गई सारी ॥ लेकर० ॥१७३॥

अर्थः – धर्मवीर दुर्लभजी इस सम्मेलन के प्राण कहे जा सकते थे। उन्होने तन मन से इस मतभेद को सुलझाने का प्रयत्न किया। एक दिन तो उन्होने मुनिराजो से यह अर्ज कर दी कि जब तक आप इस प्रश्न का समुचित हल नही निकाल ले तब तक गोचरी-पानी को उठना नही होगा। सेठ वर्द्धभान जी पीतलिया और दुर्लभजी ने बिगडी बात को संभाला। पूज्य जवाहरलालजी महाराज भी अवसर के ज्ञाता थे, उन्होंने अपना मन मार कर प्रमुख चार मुनिराजो पर निर्णय छोड दिया। दोनो पक्षो ने मिल कर पंच मुनियो के फैसले को स्वीकार किया। श्री शतावधानी रत्नचन्द्रजी म०ने बन्द लिफाफे मे फैसला सुना दिया और दोनो ओर के मुनियो का एक साथ आहार-पानी हो गया। उस समय अजयपाल की राजधानी अजमेर तीर्थधाम बनी हुई थी।

॥ लावणी ॥

उदय गणी, आतमाराम, युवाचार्य भारी,
वाचस्पति खुशहाल विमल मतधारी।
बीजमती कुन्दन-पृथ्वी सुखकारी,
अमर मुनि भी उनके थे सहकारी।
ऋषि अमोल थे दक्षिण देश विहारी ॥लेकर०॥१७४॥

अर्थः—सम्मेलन मे आये हुए मुख्य मुनियो का परिचय इस प्रकार है —पंजाब संप्रदाय के वयोवृद्ध गणी उदयचन्दजी, उपाध्याय श्री आतमा-राम जी, युवाचार्य काशीरामजी, वाचस्पति श्री मदनलालजी महाराज आदि। बीजमति कुंदनमल जी, फूलचंदजी। महेन्द्रगढ से पृथ्वीचन्दजी महाराज, अमर मुनि जी और दक्षिण विहारी पूज्य अमोलख ऋषि जी, आनन्द ऋषि जी, मोहन ऋषि जी आदि भी पधारे थे ॥१७४॥

।। लावरणी ।।

पूज्य जवाहर, मन्नालाल गणधारी,
ताराचन्द मुनि, धनसुखजी प्रियकारी।
खीचन के मुनि आगम रस के रसिया,
पन्ना, तारा, तूर्य छगन मरुमुखिया।
सुज्ञ मुनि से संघ हस्ति सुखकारी ।। लेकर० ।।१७५।।

अर्थ—मालव संप्रदाय के पूज्य जवाहरलालजी महाराज, पूज्य मन्ना लालजी महाराज, जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज आदि भी थे। धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के स्थविर ताराचन्दजी महाराज, किशन मुनि, सौभाग्य मुनि, युवक हृदय धनचंद्र जी और खीचन के श्री इन्द्रमलजी महाराज, समर्थमलजी महाराज आदि भी पधारे थे। राजस्थान के मुनि सबके स्वागत मे तन मन से तैयार थे। पधारे हुए प्रमुख मुनियो मे स्थविर पन्नालालजी महाराज, स्थविर ताराचन्दजी महाराज, श्री चौथमलजी महाराज, श्री छगनलालजी महाराज, स्थविर मुनि सुजानमलजी और श्री भोजराजजी को संग लिये पूज्य हस्तिमलजी महाराज भी थे ।।१७५।।

।।लावणी।।

मरुधर मत्री, नारायण अरु हेमा,
कल्प द्रुम सम लगे श्रमणजन खेमा।
मेद पाट से जोधा मोती आये,
शीतल वंश के छोगा मुनि लहराये।
मुनि मंडल की जाऊं नित बलिहारी ।।लेकर०।।१७६।।

अर्थ—मरुधर मंत्री मिश्रीलालजी जो स्वागत समिति मे मुख्य थे, श्री दयालजी महाराज, मुनि नारायण और मुनि हेमराजजी भी थे। मरुभूमि मे मुनिराजो के डेरे कल्पवृक्ष की तरह शोभायमान थे। मेवाड से पूज्य एकलिग दास जी महाराज के पूज्य जोधराजजी, मुनि मोतीलालजी आदि और शीतलजी के श्री छोगालालजी आदि पधारे हुए थे। उस समय अजमेर मे देव सभा मी शोभा नजर आ रही थी ।।१७६।।

॥लावणी॥

रत्नचन्द्र, मणिलाल—नान मुनि आवे,
नागचंद्र अरु श्याम देख सुख पावे।
सरना चित्त गुणवान् ज्ञान के रसिया,
सत बाल प्रवचन लेखन में कसिया।
परिषद् ने सद्भाव बीज दिया डारी ॥लेकर०॥

अर्थः—गुर्जर भूमि से शतावधानी श्री रतनचन्द्रजी महाराज, शास्त्रज्ञ मणिलालजी महाराज, कवि नानचन्दजी, पूज्य नागचन्दजी महाराज, श्यामजी महाराज आदि के दर्शन कर बड़ा हर्ष होता था। सभी मुनि सरल चित्त, गुणवान् और ज्ञान के रसिक थे। संत बाल प्रवचन लेखन मे रस लेते। इस प्रकार मुनि परिषद् ने समाज मे सद्भाव के बीज गहरे डाल दिये।

॥लावणी॥

सदियो पीछे ऐसा अवसर आया,
श्रमणवर्ग में ऐक्यभाव मन लाया।
महासभा ने पूरा जोर लगाया,
चातुर्मास -व्याख्यान को एक कराया।
गण मेलन का शुभ प्रयास था भारी ॥लेकर॥१७८॥

अर्थः - वल्लभीपुर की मुनि परिषद् के बाद इतने बडे समूह के रूप मे मंगलमूर्ति मुनियो के एक स्थान पर एकत्र होने का यह पहला अवसर था, जो श्रमणवर्ग मे ऐक्यभाव लाने के लिए सम्पन्न हुआ। महा सभा ने एकता के बीज का समय समय पर सिंचन किया। सम्मेलन के बाद एकलविहारी और स्वच्छंद साधु साध्वियो मे बडा आतंक फैल गया था, श्रावक समाज मे भी जागृति आई। समयांतर मे फिरोदिया जी वकील आदि के प्रयत्नो से समाज मे एक चातुर्मास और एक व्याख्यान की व्यवस्था कायम की गई।

सप्रदायो के एकीकरण का शुभ प्रयास चालू हुआ। व्यावर मे पाच संप्रदायो का एक सघ कायम हुआ। जिसका नाम वीर वर्धमान श्रमण सघ रक्खा गया।

॥लावणी॥

नव ऊपर दो सहस सादड़ी नगरे
विविध देश से आये मुनि कई सखरे।
सघ ऐक्यहित सबने चर्चा कीनी,
बहुमत ने झट ऐक्य करण की चीनी।
संयुक्त सघ की हमने बात विचारी ॥लेकर०॥१७९॥

अर्थः—कुछ काल के वाद सवत् २००९ मे सादड़ी (मारवाड) मे फिर सम्मेलन करने का निश्चय किया गया। देश-देश के वडे-वड़े मुनि इकट्ठे हुए। मालवा, मेवाड, मारवाड और पंजाब की कुल २१ संप्रदायो के संत और इस वार कुछ साध्विया भी पधारी। संघ में ऐक्य निर्माण की सवने चर्चा की। समाज मे संगठन कायम किया जाय इसमे सब एकमत थे। पर कुछ संप्रदायो को रखकर सगठन वनाने के पक्ष मे थे तो कई विचारक संप्रदायो को विलीन कर एक ही सघ वनाया जाय, इस विचार के थे। वयोवृद्ध श्री पन्नालालजी महाराज आदि अनुभवियो का विचार था कि अभी संयुक्त सघ वना लिया जाय और इसका साल छः महीने के प्रयोग से परीक्षण एव स्थिति का अध्ययन कर फिर पूर्ण ऐक्य स्थापित किया जाय। पर वहुमत की यह इच्छा थी कि जो कुछ करना है अभी कर लिया जाय।

॥लावणी॥

गण कायम रख भेद विचार घटाना,
संघटना कर स्थायी कदम बढ़ाना।
नीति भेद ही मूल भेद का जानो,
नीति रीति हो एक प्रीति दृढ़ मानो।
रीति नीति का एक बनो सहचारी ॥लेकर०॥१८०॥

अर्थ —पहले पक्ष का विचार था कि वर्तमान के गच्छो को यथा-वत् कायम रख कर मतभेद कम किया जाय और मतैक्य करके फिर स्थायी एकता का कदम उठाया जाय। क्योकि समाचारी और मतभेद ही सप्रदाय भेद का मुख्य कारण है। जव नीति रीति मे एकता होगी तो प्रीति भी स्थायी एव अटूट हो सकेगी। व्यवहार मे भी कहा जाता है कि:—

"समान शीलव्यसनेपु सख्यम्।"

समान आचार विचार वालो मे मैत्री टिकती है। अतः नीति रीति एक कर संगठन वनाया जाय।

॥ लावणी ॥

हुए नियम कई बनी योजना भारी,
लोकतन्त्र की रीत चित्त मे धारी,
एक तन्त्र पर लोकतन्त्र मंडरावे,
लेन बुराई अपने शिर को च्हावे।
चलते रंग में सबने ली स्वीकारी ॥१८१॥

अथः सवने वढे-चढे उत्साह मे संघ ऐक्य की योजना सपन्न की और एक समाचारी के कुछ नियम तैयार किये गये। राष्ट्र का लोक-तन्त्रीय ढाचा मन मे रख कर संघ की रचना की गई। सारा संघ एक आचार्य के नेतृत्व मे हो, इस भावना पर लोकतन्त्र मंडरा गया। बुरा न वनने के विचार से उस समय कोई नही वोला। किसी ने स्वेच्छा से तो किसी ने दवाव से, इस प्रकार सवने उस समय इस सघैक्य को स्वीकार कर लिया। जिनके मन मे संशय था उन्होने प्रवेश पत्र में अपना नोट भी लगा दिया।

॥ लावणी ॥

सोजत मे मुनि मंत्री मिल सव आये,
समाधान हित पंडित मुनि बुलवाये।

फिर भी रह गये प्रश्न कई सुलझाने,
परामर्श हित जोधाणे मुनि माने।
दीर्घकाल तक रहे मुनि सुविचारी ॥लेकर०॥१८२॥

अर्थः– साल भर वाद ही सोजत मे फिर मन्त्रिमण्डल की वैठक हुई। समाचारी मे सशोधन एव पं० समर्थमलजी महाराज के समाधान का प्रयत्न किया गया। कई वातो मे खुल कर चर्चाए हुईं। फिर भी पर्व तिथि निर्णय और सचित्त—अचित्त आदि के कई प्रश्न सुलझाने अवशेष रह गये। प्रमुख मुनि किसी जगह विराज कर शास्त्रीय मतभेदो पर विचार करे ऐसा निर्णय हुआ। तदनुसार प्रमुख-प्रमुख मुनिराजो का विचार-विमर्श हेतु जोधपुर मे चातुर्मास हुआ और दीर्घकाल तक मन्त्रणा कर शास्त्रीय पाठ और प्रतिक्रमण की एकता आदि पर निर्णयात्मक विचार भी किया।

॥ लावणी ॥

महामंत्री आनन्द सर्व सुखदायी,
सहमत्री गज और प्यार कहलाई।
उपाचार्य गणईश मुनि थे नामी,
आत्माराम आचार्य संघ के स्वामी।
श्रमणसघ की चिन्ता सबको भारी ॥१८३॥

अर्थः—श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण—सघ के महामत्री—प्रधान मंत्री श्री आनन्द ऋषिजी महाराज थे और सहमत्री श्री गजमुनि—हस्तिमलजी महाराज व श्री प्यारचन्दजी महाराज थे जो सहायक रूप से काम करते। सघ के प्रमुख आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज एव उपाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज निर्वाचित हुए। श्रमणसघ की समुन्नति के लिये ये सव निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे।

॥ लावणी ॥

दो हजार तेरह का वर्ष सुहाया,
सम्मेलन मीनासर मे भरवाया।

प्रायश्चित्त—निर्णय नोखा मे कीना,
जोधाणे चोमास का परिचय दीना।
मुनिमण्डल ने अपनी मुद्रा मारी ॥१८४॥

अर्थः—जोधपुर संयुक्त चातुर्मास के कार्य को मूर्त रूप देने के लिये स० २०१२ –१३ मे फिर भीनासर मे सम्मेलन करना निश्चित हुआ। नोखामण्डी से ही कार्य चालू कर दिया गया। देशनोक और भीनासर तक परिषद् चलती रही। नोखामडी मे प्रायश्चित्त क विषय मे विचार विनिमय कर एक सर्वमान्य तालिका तैयार की गई। जोधपुर चातुर्मास की कार्यवाही के लिये कई मुनियो की राय रही कि अनुपस्थित प्रतिनिधि मडल को सुनाकर इसे पास किया जाय, जब तक मुनिमडल की स्वीकृति नही हो जाती तब तक तालिका मान्य नही हो सकती।

॥ लावणी ॥

प्रतिक्रमण, श्रुतपाठ और समाचारी,
संयोजन प्रार्थना किया हितकारी।
पर मण्डल की छाप हेतु दुहराना,
लोकतन्त्र की महिमा रूप पिछाना।
प्रमुख प्रश्न मे उलझी बुद्धि हमारी ॥लेकर०॥१८५॥

अर्थ:—जोधपुर के सयुक्त चातुर्मास मे साधु प्रतिक्रमण के पाठ, शास्त्र के विवादास्पद सूत्रपाठ, समाचारी और सर्वमान्य प्रार्थना का परिश्रमपूर्वक सयोजन किया गया, किन्तु कुछ प्रमुख मुनि वहा नही थे अत उनको मान्य कराने हेतु पुन. दुहराना आवश्यक समझा गया। उपाचार्य श्री, प्रधानमत्री, सहमत्री प० समर्थमलजी, कविजी अमरचन्दजी महाराज और वाचस्पतिजी श्री मदनलालजी महाराज इन सब प्रमुख मुनियो ने विचारपूर्वक जो निर्णय किया उसको सर्वमान्य करने मे कोई बाधा नही होनी चाहिये थी क्योकि मत्री मुनियो ने ही निर्णय किया था कि पाच, छ प्रमुख मुनि चार मास रहकर शास्त्रीय विचार–चर्चा एव निर्णय करें। फिर भी प्रतिनिधिमडल की छाप के लिये जब सारी कार्यवाही उनके

सामने रखनी आवश्यक हुई तब हमने समझा कि लोकतंत्र की कैसी महिमा होती है। भीनासर—परिषद् का समय प्राय ऐसे ही चला गया। कुछ प्रमुख प्रश्न ऐसे उलझे कि उनका निर्णय करना असंभव हो गया। किसी तरह सघ में विघटन न हो जाय और जैसे तैसे कार्यवाही पूरी कर के विदा हो ले, इसी मे श्रेय समझा गया।

।। लावणी ।।

यंत्र समस्या ने तनाव कर दीना,
बिगड़ी स्थिति मे निर्णय मोगम कीना।
परम्परा नहीं, फिर भी जो बोलेगा,
शुद्धि हेतु प्रायश्चित्त लेना होगा।
खुला समझ बोले आतुर व्रतधारी ।।लेकर०।।१८६।।

अर्थ—पण्डित समर्थमालजी महाराज को सघ मे मिलाने का यह अन्तिम अवसर समझ कर भीनासर सम्मेलन के लिये उनको विशेप रूप से आमन्त्रण दिया गया था। यहा तक भी कहा गया कि यदि आप संघ मे मिलते हों तो आपकी सब बाते मजूर की जा सकती है। परन्तु वे भी बडे कुशल निकले। सब कार्यवाही देख सुनकर भी तटस्थ रह गये। यंत्र समस्या ने राजस्थान और पजाब के दो मच खडे कर दिये. बात को किनारे लाने के लिये मुनिमडल ने प्रथम निर्णय किया कि यह प्रश्न राजस्थान का नही है। जहा की समस्या है उस प्रान्त के मुनि राज मिलकर अपना निर्णय करे। परन्तु महासभा के शिष्ट मडल द्वारा यह निवेदन करने पर कि श्रमण संघ का एक ही निर्णय होना चाहिये, अन्यथा संघ दो भागों मे विभक्त हो जायगा। वाद विवाद के पश्चात् एक गोल—मोल निर्णय निम्न प्रकार से किया गया —"ध्वनियंत्र मे बोलना साधु—मर्यादा के विरुद्ध है पर कभी अपवादरूप में विवश हो बोलना पडे तो प्रायश्चित लेना होगा।" प्रस्ताव की भाषा ऐसी रखी गई कि इससे बचाव का रास्ता मान लिया गया। अपवाद रूप से बोला गया तो प्रायश्चित्त लना जरूरी होगा। इस प्रकार प्रस्ताव मे नियन्त्रण होने पर भी बोलने की आतुरता से कुछ सन्तो ने छूट समझकर उसको चालू कर दिया।

॥लावणी॥

प्रथम चरण में अनुशासन को ढीला,
देख श्रमणगण के मन में हुई पीला।
महासभा अध्यक्ष सूरि पे जावे,
प्रायश्चित निर्णय में भेद पड़ावे।
दो धारा का वाद चला दुखकारी ॥लेकर०॥१८७॥

अर्थः—जव तक अपवाद और प्रायश्चित्त का खुलासा नही हो जाय तव तक ध्वनियंत्र पर वोलना अनुशासन की उपेक्षा करना था। फिर भी समझ भेद से कुछ वोल गये। प्रथम चरण मे ही अनुशासन की उपेक्षा हो तव भविष्य मे अनुशासन कैसे रहेगा ? सघ प्रेमियो के मन में वडी चिन्ता हुई। आचार्य श्री की सेवा मे महासभा के अध्यक्ष ने जा कर अर्ज की, आचार्य श्री ने उपाचार्य श्री को अवगत करके एक निर्णय प्रकट करने का फरमाया पर उपाचार्य श्री को विना वतलाये ही उसे प्रकट कर देने से दोनो महापुरुषो के वीच भेद पड गया। फिर दो धारा-एक धारा को ले कर वाद चला, जो सघ की उन्नति मे बडा विघ्न रूप (वाधक स्वरूप) सिद्ध हुआ।

॥लावणी॥

मुख्य मंत्री वाचस्पति मन अकुलाये,
त्यागपत्र में अपने भाव बताये।
गणिवर से नहि समाधान कर पाये,
यत्न करत भी प्रश्न सुलझ नहि पाये।
शुद्धिकरण और पर्व में उलझे भारी ॥लेकर०॥१८८॥

अर्थ —भीनासर सम्मेलन मे वाचस्पति मदनलालजी महाराज को प्रधानमंत्री वनाया गया था। पर अनुशासन हीन स्थिति को देखकर आपके मन मे वड़ा दुख हुआ। उन्होने आचार्य श्री की सेवा मे, अपना समाधान न होने की स्थिति में त्यागपत्र दे दिया। पत्राचार मे आचार्य श्री से समाधान नही हो सका फिर आचार्य श्री ने मिल कर वात करने का प्रस्ताव

रखा, पर ऐसा नही हो पाया। प्रधान मंत्री के अभाव मे श्रमणसघ का कार्य और भी अधिक उलझ गया। शुद्धिकरण, ध्वनिग्रन्त्र और सवत्सरी पर्व की समस्या में सब परस्पर उलझने लगे। फलस्वरूप सघ की प्रगति अवरुद्ध हो गई।

॥लावणी॥

उपाचार्य आचार्य में पड़ गई खाई,
सुलझाने को जब युक्ति नहीं पाई।
निर्णय हित मुनियो की समिति बनाई,
उपाचार्य ने दिया संघ छिटकाई।
श्रमणसंघ के हित मे चोट करारी ॥लेकर०॥१८९॥

अर्थ—आचार्य और उपाचार्य के बीच की खाई को पाटने के जितने प्रयास किये गये वे सब विफल हुए। उपाध्याय मुनि श्री हस्तिमल्लजी महाराज द्वारा प्रस्तुत की गई सप्त सूत्री योजना से कार्य नहीं हुआ। निमित्त पाकर स्थिति अधिक उलझती गई। अन्त मे आचार्य श्री ने एक परामर्श समिति का निर्वाचन किया और विवादास्पद प्रश्नो के निर्णय हेतु उसको पूर्ण अधिकार प्रदान किये। बदली हुई स्थिति मे उपाचार्य श्री ने भी सघ से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इससे सघ को असमय मे बडी घातक चोट पहुंची।

॥ लावणी ॥

मन्त्री का खाडा नहिं भरने पावे,
उपाचार्य भी संघ त्याग कर जावे।
देख दशा हितचिन्तक मन घबरावे,
उपाध्याय इक उदियापुर को जावे।
समाधान हित गणी से बात विचारी ॥लेकर०॥१९०॥

अर्थ—प्रधान मंत्री का रिक्त स्थान भरने से पहले ही उपाचार्य श्री ने सघ त्याग दिया, ऐसी स्थिति मे सघ का सचालन कैसे हो, इस

सम्बन्ध मे हितचिन्तकों के मन में बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई। स्थिति को सुलझाने के लिये उपाध्याय श्री हस्तिमलजी ने सोचा कि उदयपुर जा कर उपाचार्य श्री को कुछ अर्ज किया जाय और समाधान का मार्ग ढूंढने की कोशिश की जाय। उन्होंने उपाचार्य श्री से चातुर्मास की एवं श्रमणसंघ मे रह कर कार्य करने की प्रार्थना की।

॥लावणी॥

अशुभ योग नहि बात बैठने पाई,
श्रावक जन भी रहे न मुख्य सहाई।
श्रमणसंघ में कैसे हो दृढ़ताई,
सभल चले अब भी इसमें चतुराई।
अजरामर में किया मिलन फिर जहारी ॥लेकर०॥१६१॥

अर्थ —संयोग की बात, उपाचार्य श्री के साथ बातचीत मे सफलता नही मिली, श्रावक वर्ग की ओर से सहकार मिलने की आशा थी पर वह भी जैसा चाहिये, वैसा नही मिल सका। परस्पर की भ्रान्ति से अधिकारियों के मन मे टूटा हुआ प्रेम का धागा फिर से जोड़ कर श्रमण संघ को शक्तिशाली कैसे बनाया जाय, यह विचार चल रहा था। पर इसी बीच शिथिलाचार और अनुशासनहीनता ने संघ मे पार्टी खड़ी करदी श्रमणों के पारस्परिक संबंध शिथिल हो गये। परामर्श समिति के संयोजक उपाध्याय आनन्द ऋषिजी महाराज साहब ने अजमेर मे फिर सम्मेलन की घोषणा की।

॥ लावणी ॥

आश लिये जन दूर दूर से आये,
ऋषिवर के चरणों मे भाव सुनाये।
समाधान हित सबको अवसर दीना,
संघ शुद्धि हित ठोस कदम नहीं लीना।
आचारज पद का हुआ उत्सव भारी ॥लेकर०॥१६२॥

अर्थ—एक बार फिर आशा की किरण प्रकट हुई, क्योकि आचार-निष्ठ संयोजक आनन्द ऋषिजी महाराज साहब के नेतृत्व मे काम हो रहा था। लोग दूर दूर से आशा लिये आये और मुनियो ने भी ऋषिजी के चरणों मे अपने भाव सुनाये। कार्यवाही का आरम्भ उपाध्याय हस्ती मलजी की तालिका से ही किया गया। सम्मेलन के नियमो का आज तक कैसा पालन हुआ, उसकी झाकी प्रस्तुत की गई। सबको अपनी बात रखने का मौका मिला। पर अलग अलग ग्रुप बने हुए थे, संघ—शुद्धि और शिथिलाचार निवारण की बात श्रावक संघ की ओर से भी रखी गई पर भविष्य की हिदायत देने के अतिरिक्त कोई ठोस कदम नही उठाया गया। हा, शास्त्रीय प्रवर्तक पद और गण व्यवस्था मान ली गई। संघ को चलाने हेतु बडे ठाट से उपाध्याय आनन्द ऋषिजी महाराज को आचार्य पद पर आरुढ कर मंगल समारोह की समाप्ति कर दी गई।

॥लावणी॥

आनन्द के शासन मे संयम दीपे,
उज्वल अनुशासन से पर दल जीपे।
गणाधिकारी निज अधिकार निभाते,
मुनिजन अपना नैतिक धर्म बजाते।
तो आशा हो जाती सफल हमारी॥ लेकर० ॥१९३॥

अर्थः—आचार्य आनन्द ऋषि जी के शासन मे श्रमणसंघ का संयम ददीप्यमान होकर चमकेगा और व्यवस्थित अनुशासन से श्रमणसंघ से अलग रहने वाले भी प्रभावित होगे, ऐसी आशा थी। प्रत्येक गण के प्रवर्तक निष्ठापूर्वक अपना अधिकार निभाते और साधु-साध्वी वर्ग अपना नैतिक कर्त्तव्य अदा करते तो अवश्य ही हमारी आशा सफल होती, पर हुआ इससे बिल्कुल विपरीत। संघ मे संगठन का दिखावा मात्र रहा, संयमशुद्धि और अनुशासन की भावना निकल गई॥१९३॥

एक नई उलझन

॥लावणी॥

दिल्ली मे आचार्य मिलन हुआ शानी,
पर्व ऐक्य की बात सूरि ने मानी।
परामर्श पीछे मुनियो से लीना,
ऐक्य देख खतरे मे मुनि मन भीना।
पूर्ण ऐक्य हित देवें नीति विसारी ॥ लेकर० ॥१९४॥

अर्थः—भारत की राजधानी दिल्ली मे सगठन प्रेमी कार्यकर्त्ताओं के प्रयत्न से तेरा पंथ, दिगम्बर और स्थानकवासी श्रमणसघ के आचार्यो का शानदार मिलन हुआ। जैन एकता के प्रसग से आ० तुलसीजी ने कहा—श्वेताम्बरो के सांवत्सरिक पर्व की समाप्ति और दिगम्बरों के सांवत्सरिक पर्व का आरभ एक दिन है। उसे सर्व सम्मत पर्व मान लिया जाय तो समस्या सुलझ सकती है। आचार्य श्री ने कान्फ्रेन्स के परामर्श से इस निर्णय को स्वीकार कर लिया। बाद मे मुनियो से मंजूरी लेने आये, जब कि मुनि परामर्श समिति को पहले पूछना था। अधिकाश मुनियो ने कहा—जैन समाज का सम्पूर्ण ऐक्य होता हो तो भीनासर सम्मेलन के निश्चयानुसार हम सर्वथा तैयार हैं। अन्यथा ४९-५० दिन की परम्परा को छोड़ना उचित नही समझते, क्योंकि ऐसा करने से हम सौराष्ट्र के स्थानकवासी जैन सघ से भी अलग पड जाते है ॥१९४॥

मध्यम मार्ग

॥ लावणी ॥

सघ भेद टालन का मार्ग निकाले,
श्रावण में कर श्रमण, भादवा पाले।
शासनहित सबने यो मान्य कराया,
अगला निर्णय वर्ष मध्य मे चाह्या।
पर आगे को निर्णय दिया विसारी ॥ लेकर० ॥१९५॥

अर्थः—पर्व के निमित्त से श्रमणसघ का भंग न हो जाय इसलिये

लुधियाना से आचार्य श्री ने एक सदेश प्रेपित किया कि साधु-साध्वी भले ही परम्परानुसार श्रावण मे पर्व मनावे किन्तु श्रावकसघ को सार्वजनिक रूप से भादवा मे शास्त्र आदि सुनावे अर्थात् छुट्टी आदि समाज के व्यावहारिक कार्य एक दिन किये जाय । शासनहित को ध्यान में रख कर सबने इस शर्त के साथ स्वीकार किया कि आगे के लिये स्थाई निर्णय एक वर्ष के अन्दर अन्दर हो जाना चाहिये ।

पहले की तरह इस बार भी महासभा की तरफ से इस वचन का पालन नही हुआ । दूसरी साल पक्खी-पत्र और जैन पचांग का निर्णय भी समय पर नही हो सका । फलस्वरूप अलग अलग पक्खी-पत्र निकलने लगे ॥१९५॥

॥लावणी॥

जैन जगत् में पर्व न एक मनाया,
सोरठ में दो पर्व प्रथम ही आया ।
श्रमणसंघ की उलझी गुत्थी सवाई,
सबके मन थी अपनी मान बड़ाई ।
दलबन्दी ने सब ही बात विसारी ॥ लेकर० ॥१९६॥

पर्व की भिन्नता

अर्थ :—कार्यकर्त्ताओ की अदूरदर्शितापूर्ण नीति से श्वेताम्बर समाज मे तीन पर्व मनाये गये । तेरापंथ, दिगम्बर और श्रमणसघानुयायी स्थानकवासियो ने भादवा सुदी ५ को, श्वेताम्बर तपागच्छ के अनुयायियो ने भादवा सुदी ४ को, खरतरगच्छ, आँचल गच्छ और सौराष्ट्र के स्थानकवासियो ने प्राय श्रावण में पर्व मनाया । इस प्रकार समाज छिन्न-भिन्न हो गया । सौराष्ट्र मे अलग अलग पर्व मनाने का प्रसंग पहला ही था । इस प्रकार श्रमणसघ की गुत्थी अधिक उलझ गई । संघ के हित की अपेक्षा सब अपनी-अपनी बात के लिये चिंतित थे । कान्फ्रेंस के अधिकारी भी अपनी बात को सही साबित करने की धुन मे रहे । परिणामस्वरूप अधिकारी समाज मे अपनी विश्वस्तता खो बैठे ॥१९६॥

हितैषियो का बहिर्गमन

॥ लावणी ॥

हस्ती, पन्ना देख दशा अकुलाये,
गणिवर को अपना ज्ञापन कहलाये।
हो निराश जिन शासन रीत निभाने,
सघ पार्टी का त्याग किया मनमाने।
यथाशक्ति शासन सेवा ली धारी ॥ लेकर० ॥१९७॥

अर्थ — वयोवृद्ध प्र० श्री पन्नालालजी महाराज साहब और उपाध्याय श्री हस्तीमलजी महाराज साहब को यह दशा देखकर बडा खेद हुआ, उन्होने आचार्य श्री को ज्ञापन किया कि सघ की व्यवस्था न सुधरने पर हम लोगो को निराश हो संघ से अलग होना पड़ेगा। जिन शासन की रीति निभाने और कषाय-वृद्धि से बचने के लिये २०२५ मे दोनो ने साघ से अपना सबध विच्छेद कर लिया। शक्तिपूर्वक स्वतन्त्ररूप से शासन और संघ की सेवा करना, यही इन दोनो की भावना रही। श्रमणसंघ कही छिन्न-भिन्न नही हो जाय इस दृष्टि से इन्होने अपने सहयोगी मरुधर मुनि श्री चादमल जी महाराज साहब और पं० श्री पुष्कर मुनि को भी संघ त्याग की प्रेरणा नही दी ॥१९७॥

॥ लावणी ॥

जनपद मे आजादी का युग आया,
जैन जगत् ने भी कुछ पलटा खाया।
सम्प्रदाय के झगड़े कोई न चहावे,
प्रेम मिलन को बाहर कदम बढ़ावे।
कपटभाव अन्तर से कर दो न्यारी ॥ लेकर० ॥१९८॥

वर्तमान मे क्या करे

अर्थ.— देश मे जब से आजादी का युग आया धार्मिक जगत् और खास कर जैन समाज ने भी अपना रूप बदल दिया। संप्रदाय के झगडे

अब कोई नही चाहता। परस्पर की निन्दा और वादविवाद का वातावरण बदल गया। सब एक दूसरे से मिलने एवं एक साथ व्याख्यान की बात करने लगे, पर अन्तर मे सम्प्रदायवृद्धि और अपनी प्रमुखता को सबसे ऊपर और सबसे आगे रखने का कपट भाव नही गया। यदि सरल एवं शुद्ध भाव से काम किया जाय तो जिन शासन का हित हो सकता है ॥१९८॥

॥ लावणी ॥

संघ शक्ति का सब ही नाद बजावे,
संयम बल ले पीछे कदम हटावे।
आडम्बर को बुरा कहत अपनावे,
राजनीति को धर्म मार्ग मे लावे।
मुनियो ने भी मानव-हित की धारी ॥ लेकर० ॥१९९॥

अर्थ:—आज का यह सामूहिक नारा "संघे शक्ति" यानि संघ में ही शक्ति है, सभी की ओर से बुलन्द किया जा रहा है पर सयम-बल की खामी को मिटाना नही चाहते, कमजोरियो को समन्वय से चलाना चाहते है, आडम्बर को बुरा बताकर भी नित नये रूप मे आडम्बर अपनाते जा रहे है। सच बात तो यह है कि धर्म मार्ग मे भी आज राजनीति प्रवेश पा रही है। जैन साधु जो किसी समय प्रवृत्तिमार्ग से दूर रहने मे ही श्रेय मानते थे, वे भी आज मानवहित और राष्ट्रसुधार के नाम से राजनीति के नेताओ को प्रसन्न करने मे लगे है ॥१९९॥

॥ लावणी ॥

बुद्धिवाद से भेद मिटे नही सारे,
समतावाद ही जग का संकट टारे।
अनेक में जो एक तत्व पहचाने,
एक धर्म का विविध रूप जग जाने।
अनेकान्त सम्यक् जन जन सुखकारी ॥लेकर०॥२००॥

सही मार्ग

अर्थः—बुद्धिवाद से अपनी बात इच्छानुसार बैठाई जा सकती है पर उससे मतभेद का अन्त नही होता। विश्व मे शान्ति तो समतावाद से ही आ सकती है। सम्यक् अनेकान्तवाद ही सब जन के लिये सुखकारी हो सकता है। यदि उसको अपना लिया जाय तो अविद्या की सारी आंधी छिन्न-भिन्न हो सकती है ॥२००॥

॥ लावणी ॥

शुक्लांबर, आकाशाम्बर, ज्ञान पुजारी,
तेरापंथ अरु निश्चयनय के धारी।
सरलभाव से अपनी शाख चलावे,
पर भीतर मे झगडा नही दिखावे।
धर्मनीति की शिक्षा दे मिल प्यारी ॥ लेकर० ॥२०१॥

सम्प्रदायो का कर्त्तव्य

अर्थः—"जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि" इस कहावत के अनुसार हर आचार्य ने अपनी दृष्टि के अनुसार शास्त्र के आधार से मार्ग पकडा और उसी को सत्य समझ कर प्रचार करने लगे। फलस्वरूप कोई श्वेताम्बर, कोई दिगम्बर, कोई ज्ञानवादी-कविपंथ, तेरापथ, निश्चयवादी-आत्मधर्मी आदि सम्प्रदाये चल पडी। जिनशासन की शोभा और विश्वहित की दृष्टि से यह परमावश्यक है कि वे सब सरलभाव से अपनी शाखाएं चलाना चाहे तो चलावे पर भीतर मे रागद्वेप बढ़ा कर एक दूसरे की निंदा नही करे अपने को ऊंचा और दूसरे को नीचा नही दिखाये। सामान्यजनो मे मिल जुल कर अहिसा, सत्य, सदाचार की शिक्षा देकर धर्म को पुष्ट करे ॥२०१॥

॥लावणी॥

सद् विचार रक्षण से जनमन भावे,
टकरा कर अपनी नाहि शक्ति गमावे।

सम्प्रदाय में दोष न तब लग जानो,
वाद करण मे करे न अपनी हानो।
धर्म-नीर हित सम्प्रदाय की क्यारी ॥ लेकर० ॥२०२॥

सम्प्रदाय की उपयोगिता

अर्थः—देश मे सुलभता से धर्म प्रचार करने के लिये छोटे छोटे वग वनाकर जनता को सन्मार्ग पर चलाना सप्रदाय का काम है। सम्प्रदायो ने देश मे सदाचार और सुनीति का रक्षण किया है। यदि परस्पर टकरा कर अपनी शक्ति व्यर्थ नही खोये तो उसमे कोई दोप नही है। वादविवाद मे पड़कर इन सम्प्रदायो को अपनी हानि नही करनी चाहिये।

धर्म के स्वच्छ जल की रक्षा के लिये सम्प्रदाय एक क्यारी है। विना सम्प्रदाय के धर्म की रक्षा देह विना आत्मा के अस्तित्व की तरह है। सम्प्रदाय की उपयोगिता धर्म रूपी जल को निर्मल एव सुरक्षित रखने मे ही है ॥२०२॥

॥लावरणी॥

संप्रदाय का वाद दोष दुखकारी,
परगण की अच्छी भी लगती खारी।
पर उन्नति को देख द्रोह मन लावे,
स्पर्धा से अपने को नही उठावे।
वाद यही है अशुभ अमंगलकारी ॥ लेकर० ॥२०३॥

सम्प्रदाय का दोष

अर्थ—अपनी मान्यता का आग्रह ही दुखदायी दोष है। अपनेपन के आग्रह से अन्य समुदाय की अच्छी वात को भी वुरी मानना और अपनी वुरी वात को भी राग से अच्छी समझना, यह सम्प्रदायवाद है। सम्प्रदायवादी दूसरे की उन्नति देखकर मन ही मन जलता रहता है किन्तु स्पर्धा से दूसरे का अनुसरण कर अपना उत्थान नही कर पाता। यह वाद ही

सम्प्रदाय का अमगलकारी, अशुभ रूप है। इससे सदा बचते रहना लोक-हित मे उपयोगी है ॥२०३॥

॥लावणी॥

धर्म प्राण तो सप्रदाय काया है,
करे धर्म की हानि वही माया है।
बिना संभाले मैल वस्त्र पर आवे,
सम्प्रदाय में भी रागादिक छावे।
वाद हटाये सम्प्रदाय सुखकारी ॥ लेकर० ॥२०४॥

समन्वय

अर्थः—धर्म और सम्प्रदाय का ऐसा सम्बन्ध है जैसा जीव और काया का। धर्म को धारण करने के लिये सम्प्रदाय रूप शरीर की आवश्यकता होती है। धर्म की हानि करने वाला सप्रदाय, सप्रदाय नही, अपितु वह तो घातक होने के कारण माया है। बिना संभाले जैसे वस्त्र पर मैल जम जाता है, वैसे ही सप्रदाय मे भी परिमार्जन-चिन्तन नही होने से रागद्वेषादि मैल का बढ जाना सभव है। पर मैला होने से वस्त्र फैका नही जाता, अपितु साफ किया जाना है। वैसे ही विकारो के कारण सप्रदाय का त्याग करने की अपेक्षा विकारो का निराकरण कर सप्रदाय का शोधन करना ही श्रेयस्कर है ॥२०४॥

॥ लावणी ॥

पर समूह की अच्छी भी बद माने,
अपने दूषण को भी गुण न माने।
दृष्टिराग को छोड़ बनो गुणरागी,
उन्नत कर जीवन हो जा सोभागी।
साधन से लो साध्य बनो अविकारी ॥ लेकर० ॥२०५॥

अर्थः—सम्प्रदाय की दृष्टि यह होती है कि अपने अतिरिक्त किसी अन्य समुदाय मे अच्छाई हो ही नही सकती, उसकी दृष्टि मे अच्छी भी

पराई होने से बुरी है। किन्तु गुणवादी जहाँ भी गुण देखता है उसे अपना समझता है, उससे प्रेम करता है। दृष्टि-राग को छोड कर गुण के भक्त बनो, गुणग्रहण करने से अपना जीवन उन्नत होगा। वास्तव मे साधन से वीतराग भावरूप साध्य को प्राप्त करना ही अविकारी होने का मार्ग है ॥२०५॥

॥ लावणी ॥

सहस बीस एक पंचमकाल कहावे,
अन्त समय तक शासन सत्व बतावे।
चढ़ उतार की रीति सदा चल आवे,
उदय अस्त समरूप ज्ञानी जन गावे।
अन्त समय भी होगा भव-अवतारी ॥ लेकर० ॥२०६॥

अर्थः इस समय पचम काल चल रहा है जो इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण का है। ढाई हजार वर्ष के लगभग का समय बीत चुका है, अभी १८५०० वर्ष से अधिक शेष है। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार अन्त समय तक साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध सघ का अस्तित्व माना गया है। उन्नति अवनति का क्रम, चढाव उतार के रूप मे सदा से चला आ रहा है। इसी को स्थूल दृष्टि से शासन का उदय और अस्त कहा गया है। अन्तकाल तक भी एक भव करके मुक्ति प्राप्त करने वाली आत्माए होगी। फिर आज ही हताश होने जेसी क्या बात है ? ॥२०६॥

आवश्यकता है:—

॥ लावणी ॥

शिथिल संघ को देख न चित अकुलावे
सुप्त पराक्रम को कुछ तेज करावे।
अर्थ-लाभ सम धर्म-लाभ मन भावे,
जन जन मे शासन की जोत जगावें।
धर्म मिशन हित त्याग करो नर नारी ॥लेकर०॥२०७॥

अर्थः— वर्तमान मे सघ और उसके आचार की शिथिलता को देखकर वहुत से लोग अधीर हो जाते है। वास्तव मे अधीर होने की आवश्यकता नही है, आवश्यकता है सोये हुए पौरुप को जगाने की। महाराज विम्वसार और सम्प्रति आदि के समान आपको फिर अपना धर्म प्रेम सक्रिय करना होगा। अर्थलाभ के समान धर्मलाभ की भी मन मे भूख जगानी होगी। जव सव लोग धर्म कार्य के लिये योग देने हेतु तैयार हो जायेगे तो जन जन मे जैन शासन की ज्योति जलते देर नही लगेगी ।।२०७।

प्रशस्ति

।। लावणी ।।

वर्द्धमान शासन के भूधर मुनिवर,
पूज्य धर्म के पौत्र शिष्य है सुखकर।
भूधर गणि के शिष्य कुशल-जय भ्राता,
गुमान, दुर्गादास भाग्य निर्माता ।
सघ शिरोमणि रत्नचन्द्र सुखकारी ।। लेकर० ।।२०८।।

अर्थ·—भगवान् श्री महावीर के शासन काल मे भव्य जीवो को वीतराग धर्म के उपदेशामृत से परमानन्द प्रदान करने वाले पूज्य धर्मदास जी महाराज वड़े यशस्वी मुनि हुए। उनके पौत्र-शिष्य (शिष्य के शिष्य) भूधर जी महाराज वडे ही प्रतापी सत हुए है। पूज्य भूधरजी महाराज के शिप्य कुशलजी श्री जयमलजी के गुरुभाई थे। पूज्य कुशलजी के शिष्य श्री गुमानचन्दजी और दुर्गादासजी सघ के भाग्य निर्माता अर्थात् नवनिर्माण करने वाले हुए। उनके पश्चात् आचार्य रत्न चन्द्रजी सघ के शिरोमणि हुए ।।२०८।।

।। लावणी ।।

रत्नचन्द के शिष्य हमीर सुहाये,
पटधर तीजे पूज्य कजोडी भाये।
विनयचन्द्र श्रुतधर प्रतिभा के स्वामी,

लघु भाई सौभाग्य हुए गुरु नामी ।
अन्तेवासी हस्ती ने मन धारी ॥ लेकर० ॥ २०६ ॥

अर्थ—रत्नचन्द्रजो के शिष्य पूज्य हमीरमलजी महाराज हुए और तीसरे पट्टधर पूज्य कजोडीमल जी महाराज, चतुर्थ पूज्य श्री विनयचन्द्र जी महाराज शास्त्रोके ज्ञाता और प्रतिभाशाली मुनिराज थे । उनके छोटे गुरुभाई पूज्य सौभाग्यमलजी महाराज वडे ही यशस्वी सत हुए है । उनके शिष्य "हस्तीमल" (पूज्य हस्तीमल जी महाराज) के मन मे गुरुभक्ति से भूतकाल के इन आचार्यो की गुणगाथा गाने की भावना जागृत हुई ॥२०६॥

॥ लावणी ॥

दो हजार छब्बीस डेह गढ़ मांहि,
भक्ति सहित गुणगाथा मैने गाई ।
परंपरा औ ग्रन्थ पटावली लख कर'
किया काव्य निर्माण हृदय प्रीति धर ।
हस दृष्टि से करें सुज्ञ गुणधारी ॥लेकर०॥ ॥२१०॥

अर्थः—संवत् २०२६ मे डेह गांव मे पूर्ण भक्ति के साथ यह गुण-गाथा गाई । संत परम्पराओ, ऐतिहासिक ग्रन्थो और पट्टावलियो का सम्यक् प्रकार से विश्लेपणात्मक अध्ययन करके वडे प्रेम के साथ मैने इस काव्य का निर्माण किया है । विद्वान् पाठक हस जैसी "क्षीर नीर विवेक" वुद्धि से इस काव्य मे से गुणो को ग्रहण करे और सशोधनीय स्थलो के लिये प्रेम से सूचना करे तो यथोचित ध्यान दिया जायगा ।

(परिशिष्ट)

लोंकागच्छ की परम्परा

विक्रम की सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भ काल मे जैन समाज मे एक धार्मिक क्रान्ति हुई, जिसके सूत्रधार थे लोकाशाह। लोकाशाह ने शास्त्र-लेखन के प्रसग मे जैन धर्म के आचार मार्ग को जिस प्रकार समझा, समाज की तत्कालोन चर्या उससे पूर्णत भिन्न पाई। यह देख कर आपको वडा आघात पहुचा और आपने समाज के सम्मुख सत्य को प्रकट कर दिया। विराध के तोव्रातितीव्र तोक्ष्ण एवं कटु वातावरण मे भी आप सत्य का प्रचार एवं प्रसार करते रहे। पोछे नहो हटे। पुराने थोथे वाह्याडम्वरो से लोग घवरा कर ऊब चुके थे। धर्म मे आये हुए विकारो से सवही सच्चे धर्म प्रेमियो को वडो चिन्ता थी, आत्मार्थियो की आन्तरिक कामना थी कि शुद्ध सयम मार्ग को विजय वैयथन्ती पुन फहराई जाय।

सवत् १६३६ के तपागच्छीय यति श्री कातिविजय जी के लेखानुसार लोकाशाह ने स० १५०९ मे सुमतिविजयजी के पास दीक्षा ग्रहण की थी। लोकाशाह के उपदेशो से सौराष्ट्र के धर्मवीर जागृत हो उठे, सेठ लखमसी भाणाजी, नूनजी आदि भक्तो ने त्याग का झण्डा उठा लिया और अल्प समय मे ही सैकडो की सख्या मे आत्मार्थी साधु वन गये।

व्यवस्थित इतिहास लेखन के अभाव मे आज पूरी जानकारी उपलब्ध नही हो रहो है। फिर भी इतना स्पष्ट है कि लोकागच्छ के साधुओ ने वहुत थोडे समय मे ही वहुत अच्छी सफलता प्राप्त कर ली। किन्तु पारस्परिक फूट एवं मान-सम्मान की भूख व पूज्य होने की स्पृहा के प्रवाह ने इस धार्मिक क्रान्ति को भी अधिक काल तक टिकने नही दिया। आठ पाटो के वाद ही उनके आचार विचारो मे पुन शिथिलता आने लग गई और जेन साधु फिर से पालखी सरोपावधारी यति वन गये।

ऋपि जीवाजी के पश्चात् लोकागच्छ अनेक भागो मे विभक्त हो गया। ये विभक्त समुदाय मुख्य रूप से गुजराती लोका, नागोरी लोका, और लाहोरी उत्तरार्ध लोंका नाम से कहे जाने लगे।

जीवाजी ऋपि गुजरात मे विचरे इसलिये उनका परिवार गुजराती

लोकागच्छ के नाम से पुकारा जाने लगा। जीवाजी ऋषि के कई शिष्य हुए। उनमे से सवत् १६१३ मे वीरसिहजी ऋपि को वडोदा मे पदवी दी गई। और दूसरी ओर वालापुर मे कुवरजी ऋपि को पूज्य पद प्रदान किया गया। तव से एक मोटी पक्ष के और दूसरे न्हानो पक्ष के कहलाने लगे। पहले को केशवजी का पक्ष और दूसरे को कुंवरजी का पक्ष भी कहते है। दोनो की परम्परा निम्न प्रकार है :—

(१) भाणांजी ऋपि ने सर्वप्रथम स० १५३१ में यह बीडा उठाया। आप सिरोही क्षेत्र के अरहटवाडा ग्राम के निवासी थे। आपकी जाति पौरवाल व कुल ऋद्धिमान् था। आपने अहमदावाद मे दीक्षा ग्रहण की। स्व० मणिलालजी महाराज के लेखानुसार आपके साथ ४५ व्यक्तियोने दीक्षा ग्रहण की थी।

(२) **भाणां ऋषिजी** के पट्टधर **भद्दा ऋषि** हुए। आप सिरोही के साथरिया गोत्री ओसवाल थे। संघवी तोला आपके भाई थे। प्राचीन पत्र के लेखानुसार आपने विपुल ऋद्धि को छोड कर ४५ व्यक्तियो के साथ दीक्षा ग्रहण की जिनमे आपके कुटुम्व के भी चार व्यक्ति सम्मिलित थे।

(३) भद्दा ऋपिजी के पास नूना ऋपि दीक्षित हुए। आप भी जाति से ओसवाल थे।

(४) ऋषि नूना के पास भीमा ऋषि दीक्षित हुए। आप पाली मारवाड के निवासी लोढा गोत्र के ओसवाल थे। लाखो की सम्पदा छोड कर आप दीक्षित हो गये।

(५) ऋपि भीमा के पट्टधर ऋपि जगमाल हुए। आप उत्तराध (थराद) क्षेत्र के सधर ग्राम के निवासी मुराणा ओसवाल थे। मणिलाल जी महाराज ने आपको नानपुरा निवासी वतलाया है और इनका दीक्षा-काल १५५० लिखा है।

(६) ऋपि जगमाल के पश्चात् ऋपि सखा हुए। स्व० मणिलाल जी महाराज के लेखानुसार आपकी जाति ओसवाल थी और आप वादशाह के वजीर थे। ऋपि जगमाल का उपदेश सुनकर जव आप दीक्षित होने को उद्यत हुए, उस समय वादशाह ने उनसे सवाल किया—"सखा तुम साधु क्यो वनते हो?"

सखाजी ने उत्तर दिया—"दुनिया मे मनुष्य चाहे जितनी मोज मना ले पर आखिर मे यहा सबको मरना है। मै ऐसा मरण चाहता हूँ कि जिससे फिर बारम्बार नही मरना पडे। इसी लिये ससार छोडता हूँ।"

यह सुन कर बादशाह निरुत्तर हो गया। स० १५५४ मे आपने दीक्षा ग्रहण की।

(७) ऋषि सखा के पश्चात् सातवे पट्टधर ऋषि रूपजी हुए। आप 'अणहिलपुर पाटण' के निवासी व जाति के वेद महता थे। आपका जन्म काल स० १५५४ और दीक्षाकाल सं० १५६८ है। स्व० मणिलालजी महाराज के लेखानुसार आपने १५६६ दीक्षा ग्रहण की और सं० १५६८ मे पाटण ग्राम मे २०० घरो को श्रावक बनाया। स० १५८५ मे संथारा कर पाटण मे ही आप स्वर्गवासी हुए। सथारा का काल प्राचीन पत्र मे २५॥ दिन और स्व० मणिलालजी महाराज के लेखानुसार ५२ दिन का माना गया है। आपने ऋषि जीवाजी को अपना पट्टधर आचार्य नियुक्त किया।

(८) आठवे पट्टधर ऋषि जीवाजी हुए। आप सूरतवासी डोसी तेजपाल के पुत्र थे। माता कपूर देवी की कुक्षी से स० १५५१ की माघ वदी १२ को आपका जन्म हुआ। सवत् १५७८ को माघ सुदी ५ को आप सूरत मे ऋषि रूपजी के पास दीक्षित हुए। दीक्षा ग्रहण करने के समय आपकी आयु लगभग २८ वर्ष की थी।

सवत् १५८५ मे अहमदाबाद के झवेरी वाडा मे लूकागच्छ के नवलखी उपाश्रय मे आपको आचार्य पद दिया गया। सूरत मे प्रतिबोध दे कर आपने ९०० घरो को श्रावक बनाया। आपके शिष्यो मे से अनेक बडे विद्वान और प्रभावशाली थे।

सवत् १६१३ के द्वितीय ज्येष्ठ की दशमी को संथारा कर ५ दिन के अनशन से आप स्वर्गवासी हुए। स्व० मणिलालजी महाराज लिखते है कि एक समय सिरोही राज्य दरबार मे शिवमार्गी और जैन मार्गियो के बीच विवाद चल पडा। उसमे जैन यतियो को हार जाने के कारण देश निकाले का राज्य की ओर से आदेश हो चुका था। पूज्य जीवाजी ऋषि को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होने अपने शिष्य बड़े

वरसिहजी और कुंवरजी को शास्त्रार्थ करने का आदेश दिया । जीवाजी ऋषि के इन दोनों शिष्यों ने वहां जाकर चर्चा मे विजय प्राप्त की । इससे सघ मे वडी प्रसन्नता की लहर दौड गई ।

जीवाजी ऋषि के वाद साघ दो भागों में विभक्त हो गया । इसी समय मे जोवाजी ऋषि के शिष्य जगाजी के एक शिष्य जीवराज जी हुए. जिन्होंने सवत् १६०८ के लगभग क्रिया-उद्धार किया ।

कहा जाता है कि इस समय लोकागच्छ मे ११०० ठाणा थे किन्तु सगठन के टूटने एव अन्यान्य कारणो से उनके तीन-चार भाग हो गये । मणिलालजी महाराज ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ १८२ पर जीवराजजी महाराज को केशवजी गच्छ के ६ क्रियोद्धारक आत्मार्थी सतो का साथी माना है और इस क्रिया उद्धार का समय १६८६ के वाद का लिखा है ।जो परस्पर विरुद्ध है । हमारी गवेपणा के अनुसार पूज्य जीवराज का क्रिया उद्धार काल विक्रम संवत् १६६६ के लगभग होना चाहिए । सही स्थिति का पता ठोस ऐतिहासिक प्रमाणो के उपलब्ध होने पर ही चल सकता है ।

गुजराती लोंकागच्छ मोटी पक्ष और न्हानी पक्ष की पट्टावली

जीवाजी ऋषि के वडे शिष्य वरसिहजी ऋषि को स० १६१३ की ज्येष्ठ वदी १० के दिन वडोदा के भावसारो ने श्री पूज्य की पदवी प्रदान की । तव से गुजराती लोंकागच्छकी मोटी पक्ष की गादी वडोदा मे कायम हुई ।

मोटी पक्ष की पट्टावली

(९) वरसिहजी ऋषि वडे
(१०) लघु वरसिहजी ऋषि
(११) जसवन्त ऋषिजी
(१२) रूपसिहजी ऋषि
(१३) दामोदरजी ऋषि

न्हानी पक्ष की पट्टावली

(९) कुवरजी ऋषि
(१०) श्री मल्लजी ऋषि
(११) श्री रत्नसिहजी ऋषि
(१२) केशवजी ऋषि
(१३) श्री शिवजी ऋषि

(१४) कर्मसिहजी ऋषि
(१५) केशवजी ऋषि
(१६) तेजसिहजी ऋषि
(१७) कानजी ऋषि
(१८) तुलसीदास जी ऋषि
(१९) जगरूपजी ऋषि
(२०) जगजीवनजी ऋषि
(२१) मेघराजजी ऋषि
(२२) श्री सोमचन्द्रजी ऋषि
(२३) श्री हरखचन्द्रजी ऋषि
(२४) श्री जयचन्द्र जी ऋषि
(२५) श्री कल्याणचन्द्रजी ऋषि
(२६) श्री खूबचन्द्र सूरीश्वर
(२७) श्री न्यायचन्द्र सूरीश्वर

(१४) श्री सघराजजी ऋषि
(१५] श्री सुखमल्लजी ऋषि
(१६) श्री भागचन्द्रजी ऋषि
(१७) श्री वालचन्द्रजी ऋषि
(१८) श्री माणकचन्द्रजी ऋषि
(१९) श्री मूलचन्द्रजी ऋषि (काल सं० १८७६)
(२०) श्री जगतचन्द्र जी ऋषि
(२१) श्री रत्नचन्द्रजी ऋषि
(२२) श्री नृपचन्द्रजी ऋषि (अन्तिम गादीधर, आगे गादीधर नही)

नान्ही पक्ष के कुछ आचार्यो का परिचय

(९) श्री जीवाजी ऋषि के पट्ट पर ऋषि कुंवरजी हुए। प्राचीन पत्र के अनुसार माता पिता आदि ७ व्यक्तियो के साथ संवत् १६०२ मे आप जीवाजी ऋषि के पास दीक्षित हुए। जब आप बालापुर पधारे तो वहा के श्रावको ने आपको पूज्य पदवी प्रदान की, तब से कुंवरजी के साधु नान्ही पक्ष के कहे जाने लगे।

(१०) ऋषि श्रीमल्लजी : आपका जन्म अहमदावाद निवासी शाह थावर पोरवाल के यहा हुआ। आपकी माता का नाम कुंअरी था।

सवत् १६०६ की मृगसिर शुदी ५ के दिन अहमदावाद मे ऋषि जीवाजी के पास आप दीक्षित हुए। संवत् १६२६ की ज्येष्ठ वदी ५ के दिन ऋषि कु वरजी के पट्ट पर आपको आचार्य नियुक्त किया गया। कडी कलोल के पास गाव मे पधार कर आपने अनेक लोगों को प्रतिवोध दिया।

आपके उपदेश से प्रभावित होकर लोगो ने जैन धर्म ग्रहण किया और अपने गलो से कठिया उतार उतार कर कुए मे गिरा दी। आज भी वह कुआ "कंठिया कुवा" के नाम से प्रसिद्ध है। तत्पश्चात् मच्छु काठा की ओर विहार कर आप मोरवी पधारे और वहां श्रीपाल सेठ आदि ४००० व्यक्तियो को प्रतिवोध दे कर श्रावक वनाया।

(११) **ऋषि रत्नसिहजी** श्रीमल्लजी ऋषि के पीछे ऋषि रत्नसिहजी हुए। आप हालार प्रान्त के नवानगर निवासी, सोल्हाणी गोत्रीय श्रीमाल सूरशाह के पुत्र थे। आपने अपनी पत्नी को वोध दे कर ६ व्यक्तियों के साथ सं० १६४८ मे अहमदावाद मे दीक्षा ग्रहण की। सवत् १६५४ की ज्येष्ठ वदी ७ के दिन पूज्य श्रीमल्लजी ने स्वय आपको पूज्य पदवी प्रदान की।

(१२) **पूज्य केशवजी ऋषि** मारवाड के दुनाडा ग्राम मे आपका जन्म हुआ। आपके पिता का नाम श्रीश्रीमाल साहवजी (प्रभु वीर पट्टावली के अनुसार विजयराज ओसवाल) और माता का नाम जयवत देवी था। आपने स० १६७६ की फाल्गुन वदी ५ को ऋषि रत्नसिहजी के पास ७ व्यक्तियों के साथ दीक्षा ग्रहण की। सवत् १६८६ की ज्येष्ठ सुदी १३ को संघ ने मिल कर आपको पूज्य रत्न ऋषिजी के पट्ट पर आचाय नियुक्त किया। प्रभुवीर पट्टावली मे इस दिन आपका स्वर्गवास होना लिखा है, जो सही प्रतीत नही होता। ये केशवजी नान्ही पक्ष के है।

(१३) **ऋषि शिवजी महाराज** आचार्य केशवजी के पट्ट पर श्री शिवजी ऋषि हुए। आप नवानगर निवासी श्रीमाली सिघवी अमरसिंह के पुत्र थे। आपकी माता का नाम तेजवाई था। आपका जन्मकाल १६५४ है। आपने सं० १६६६ मे श्री रत्नसिहजी के पास दीक्षा ली।

प्रभुवीर पट्टावली के अनुसार स० १६३६ में जन्म और १६६० में दीक्षा लेने का उल्लेख है। आचार्य पद की तिथि भी प्राचीन पत्र मे सं० १६८८ और प्रभुवीर पट्टावली मे सं० १६७७ लिखी गई है। सवत् १७३४ में ६६ दिन के सथारे के वाद आपका स्वर्गवास हुआ। शिवजी ऋषि के सम्वन्ध मे कुछ विशिष्ट घटनाओ का विवरण मिलता है, जो इस प्रकार है

श्री रत्नसिहजी ऋषि जव जामनगर पधारे तव तेजवाई जो अपुत्रा थी, आपको वदन करने आई। रत्न ऋषिजी ने सहजभाव से कहा — "बाई! धर्म की श्रद्धा से सुख संतति मिलती है, धर्म पर श्रद्धा रख।"

तेजवाई ने श्रद्धा के साथ रत्न ऋषिजी के इस वचन को स्वीकार किया। सयोगवश तेजवाई के पाच पुत्र हो गये। कालान्तर मे पूज्य रत्न ऋषिजी फिर वहा पधारे और तेजवाई वन्दन करने के लिये अपने पुत्रो को साथ लिये आई। तेजबाई जव ऋषिजी को वदन कर रही थी उस समय उसके वडे पुत्र शिवजी पूज्य रत्न ऋषिजी की गोद में जा कर वैठ गये।

यह देख कर तेजवाई ने कहा—"महाराज यह वालक आपके पास ही रहना चाहता है, अतः आप इसे अपना शिष्य बना लीजिये।"

पूज्य रत्न ऋषिजी ने वालक व वालक की मां की इच्छा देखकर शिवजी को अपने पास रखकर पढाना प्रारम्भ कर दिया। थोडे ही समय मे तीक्ष्ण बुद्धि वाले शिवजी शास्त्रो के अच्छे ज्ञाता वन गये। शिवजी ने सवत् १६६० मे दीक्षा ग्रहण की और स० १६७७ मे आपको आचार्य पद पर आसीन किया गया।

दूसरी विशिष्ट घटना इस प्रकार है कि एकदा पूज्य शिवजी ऋषि ने पाटण मे चातुर्मास किया। वहा उनकी उत्तरोत्तर वढती हुई कीर्ति को चैत्यवासी सहन नही कर सके और उनके विरुद्ध वादशाह को भडकाने के लिये उनमे से कुछ प्रमुख व्यक्ति वादशाह के पास दिल्ली गये। यह घटना स० १६८३ की थी। उस समय दिल्ली के तख्त पर "शाहजहा" था।

उन व्यक्तियों ने शिवजी ऋषि के विरुद्ध वादशाह के कान भरे। इसके परिणामस्वरूप वादशाह ने पूज्य शिवजी को चातुर्मास मे ही दिल्ली वुलाया। स्थानाग सूत्र के वचनानुसार विहार योग्य कारण देख कर शिवजी ऋषि चातुर्मास में ही दिल्ली पधार गये।

वादशाह ने उनके साथ वार्तालाप किया और पूज्य शिवजी ऋषि के उत्तर प्रत्युत्तर से वादशाह वडा प्रभावित और प्रसन्न हुआ। वादशाह ने पूज्य शिवजी ऋषि को स० १६८३ की विजयादशमी को पालकी सरोपाव के सम्मान से सम्मानित कर पट्टा लिख दिया। इस पालकी सरोपाव के सम्मान ने शिवजी ऋषि को ही नही लोकागच्छ के समस्त यति मडल को छत्रधारी एव गादीधारी वना दिया।

छत्रधारी वनने के पश्चात् पूज्य शिवजी ऋषि जव अहमदावाद आये उस समय झवेरीवाड़ा के नवलखी उपाश्रय मे लोकागच्छीय श्रावको के वडी सख्या मे घर थे। धर्मसिहजी आदि पूज्य शिवजी के १६ शिष्य थे, गच्छ मे परिग्रह का प्रसार देख कर धर्मसिहजी आदि ने गच्छ का परित्याग कर दिया।

(१४) **श्री संघराज ऋषि :** आपका जन्म १७०५ की आषाढ सुदी १३ को सिद्धपुर मे हुआ। आप पोरवाल जाति के थे। संवत् १७१८ मे आप पिता और वहिन के साथ पूज्य शिवजी ऋषि के पास दीक्षित हुए। आपने जगजीवनजी के पास शास्त्राभ्यास किया और स० १७२५ मे आप आचार्य पद पर आसीन हुए। स० १७५५, फाल्गुन शुक्ला ११ के दिन, ११ दिन के संथारे के पश्चात् ५० वर्ष की आयु मे आपका आगरा शहर मे स्वर्गवास हुआ।

(१५) **श्री सुखमल्लजी ऋषि :** श्री संघराजजी के पाट पर ऋषि सुखमलजी हुए। जैसलमेर (मारवाड) के पास आसणी कोट ग्रामवासी, सकलेचा गोत्रीय ओसवाल देवीदास के आप पुत्र थे, आपका जन्म स० १७२७ में हुआ, आपकी माता का नाम रभा वाई था। स० १७३९ मे ऋषि संघराजजी के पास आपने दीक्षा ग्रहण की। आपने १२ वर्ष तक

तपस्या की और सं० १७५६ मे अहमदावाद शहर मे आचार्य पद पर विराजमान हुए। अन्तिम चातुर्मास धोराजी में कर के सं० १७६३ की आश्विन कृष्णा ११ के दिन आप स्वर्ग सिधारे।

(१६) **श्री भागचन्द्रजी ऋषि :** आप कच्छ भुज के निवासी और श्री सुखमल्लजी के भानजे थे। सं० १७६० की मार्गशीर्ष शुक्ला २ को आप अपनी भोजाई तेजवाई के साथ दीक्षित हुए। सं० १७६४ मे भुज में आपको आचार्य पदवी मिली और संवत् १८०५ मे आप स्वर्गवासी हो गये।

(१७) **श्री बालचन्द्रजी :** आप फलोदी (मारवाड) के छाजेड गोत्रीय ओसवाल थे। आप अपने दो भाइयो के साथ दीक्षित हुए और सवत्१८०५मे साँचोर मे आपने पूज्य पदवी प्राप्त की। संवत् १८२९ में आप स्वर्गवासी हो गये।

(१८) **श्री माणकचन्द्रजी :** आप पाली (मारवाड) के पास दरिया-पुर ग्राम के निवासी थे। आपका गोत्र कटारिया, पिता का नाम रामचन्द्र, और माता का नाम जीवावाई था। स० १८१५ मे मॉडवी मे आप वाल-चन्दजी ऋषि के पास दीक्षित हुए। स० १८२९ मे जामनगर मे आपको पूज्य पदवी प्राप्त हुई और सं० १८५४ मे आपका स्वर्गवास हो गया।

(१९) **श्री मूलचन्दजी ऋषि** आप जालोर (मारवाड के पास मोरवी गाव के निवासी सियाल गोत्रीय ओसवाल थे। आपके पिता का नाम दीपचन्दजी और माता का नाम अजवा वाई था। सवत् १८४६, ज्येष्ठ शुक्ला १० को पूज्य माणकचन्दजी के पास आपने दीक्षा ग्रहण की और सवत् १८५४ फाल्गुन कृष्णा २ को नवानगर में आचार्य पद प्राप्त किया। स० १८७६ मे, जैसलमेर नगर मे आपका स्वर्गवास हुआ।

(२०) जगतचन्दजी महाराज।

(२१) रतनचन्दजी महाराज।

(२२) श्री नृपचन्दजी महाराज।

इनकी गादी बालापुर मे है।

वड़ोदा गादी के श्री पूज्य न्यायचद्रजी थे और जैतारण (अजमेर) की गादी के पूज्य विजयराजजी थे।

इनके उत्तराधिकारी यति हेमचन्द्रजी का भी बड़ौदा मे स्वर्गवास हो गया अव यति भिक्खालालजी आदि है, किन्तु गादीधर कोई नही है।

(परिशिष्ट)

धर्मोद्धारक श्री जीवराजजी महाराज

लोकागच्छ की शिथिलता के वात सत्रहवी सदी के अन्त मे और अठारहवी के आरम्भ मे, जब लोकाशाह द्वारा जलाई गई धर्म-जागृति की ज्योति पुनः मंद होने लगी तब कुछ आत्मार्थी पुरुषो ने क्रिया-उद्धार के द्वारा पुनः उस मलिनता व शिथिलता को दूर करना चाहा। उनमें श्री जीवराजजी, श्री धर्मसिहजी, पूज्य लवजी ऋषि, धर्मदासजी और हरिदास जी प्रमुख थे। उनकी शिष्य परम्परा का विस्तृत परिचय इस प्रकार हैः—

प्रथम क्रियोद्धारक श्री जीवराजजी महाराज

पट्टावलियो के अनुसार जीवाजी और जीवराजजी नाम के दो महा पुरुष प्रसिद्ध हुए है। जीवराजजी महाराज की "जैन स्तुति पद्यावली" के अनुसार उनका समय १७वी शताब्दी का पश्चिमार्द्ध माना गया है। उन आचार्य जीवराजजी से संवधित ५ शाखाएं आज भी विद्यमान हैं। वे इस प्रकार है.—

(१) पूज्य श्री अमरसिह जी महाराज की सम्प्रदाय,
(२) पूज्य श्री नानकरामजी महाराज की सम्प्रदाय,
(३) पूज्य श्री स्वामी दासजी महाराज की सम्प्रदाय,
(४) पूज्य श्री शीतलदास जी महाराज की सम्प्रदाय,
(५) श्री नाथूरामजी महाराज की सम्प्रदाय।

शाखा १ और उसकी आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री जीवराजजी महाराज,
(२) ,, लालचन्दजी म.

(३) पूज्य श्री अमरसिह जी म. (जिनके नाम से सम्प्रदाय चलती है)
(४) ,, तुलसीदासजी म०
(५) ,, सुजानमल जी म०
(६) ,, जीतमल जी म०
(७) ,, ज्ञानमलजी म०
(८) ,, पूनमचन्दजी म०
(९) ,, ज्येष्ठमल जी म०
(१०) श्री नैनमलजी म०
(११) प्रवर्त्तक श्री दयालचन्द जी म०
(१२) श्री नारायणदासजी म०
(१३) स्थविर मुनि श्री ताराचद जी म० ।

वर्तमान मे प० पुष्करमुनिजी अपने शिष्य मडल सहित विद्यमान है ।

पू० श्री जीवनरामजी❀
पू० श्री लालचन्दजी म० के शिष्य
पू० श्री गगारामजी के पश्चात्
पू० श्री जीवनराम जी हुए । आप वड प्रभावशाली संत थे । आत्माराम जी म० जो पीछे से मूर्तिपूजक समाज मे मिल गये, आप ही के शिष्य थे ।

(१) पूज्य श्री जीवनराम जी
(२) श्री श्रीचन्दजी
(३) श्री जवाहर लाल जी, माणक चन्द जी एव उनके पन्नालाल जी
(४) पन्नालाल जी के
(५) श्री चन्दन मल जी महाराज, जो विद्यमान है ।

(अ) शाखा २ और उसकी आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री जीवराजजी म०

❀स्वर्ण जयति ग्रन्थ

(२) पू० श्री लालचन्दजी म०
(३) पू० श्री दीपचन्दजी म०
(४) पू० श्री मानकचन्दजी म०
(५) पू० श्री नानक रामजी म० (आपके नाम से सम्प्रदाय चलती है)
(६) पृ० श्री वीर मणिजी म०
(७) ,, लक्ष्मणदास जी म०
(८) ,, मगनमल जी म०
(९) ,, गजमलजी म०
(१०) ,, धूलचन्दजी म०
(११) ,, प्रवर्त्तक श्री पन्नालाल जी म०
(१२) वयोवृद्ध प्र० छोटेलालजी म० आदि विद्यमान है।

(आ) शाखा २ की आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री नानकरामजी म०
(२) ,, निहालचन्दजी म०
(३) ,, सुखलालजी म०
(४) ,, हरकचंद जी म०
(५) ,, दयालचद जी म०
(६) श्री लक्ष्मीचन्दजी म०। इस शाखा मे मुनि श्री हगामीलालजी म० आदि ३ सत विद्यमान है।

शाखा ३ और उसकी आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री जीवराजजी म०
(२) ,, लालचन्दजी म०
(३) ,, दीपचन्दजी म०
(४) ,, स्वामीदासजी म० (जिनके नाम से सम्प्रदाय चलती है)
(५) ,, उग्रसेनजी म०
(६) मुनि श्री घासीरामजी म०
(७) मुनि श्री कनीरामजी म०
(८) ,, ऋषिरामजी म०

(६) मुनि श्री रगलालजी म०

(१०) प्रर्वत्तक श्री फतेहलाल जी म० तथा श्री छगनलालजी म०। वर्तमान मे मुनि कन्हैयालालजी आदि विद्यमान है।

पूज्य श्री शीतलदास जी महाराज

सं० १७६३ मे पूज्य श्री लालचन्द्र जी म० के पास आपने आगरा मे दीक्षा ग्रहण की। आप रेणी ग्राम निवासी अग्रवाल वशज महेश जी के सुपुत्र थे। १७४७ में आपका जन्म हुआ। ७४ वर्ष तक सयम पालन कर स० १८३६ पौष सुदी १२ को समाधिपूर्वक देह त्याग किया।

शाखा ४ और उसकी आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री जीवराजजी म०
(२) ,, धनाजी म०
(३) ,, लालचन्दजी म०
(४) ,, शीतलदास जी म० (जिनके नाम से वर्तमान मे सम्प्रदाय चलती है)
(५) पूज्य श्री देवीचदजी म०
(६) मुनि श्री हीराचन्द जी म०
(७) ,, लक्ष्मीचन्दजी म०
(८) ,, भैरूंदासजी म०
(६) ,, उदयचन्दजी म०
(१०) मुनि श्री पन्नालालजी म०
(११) ,, नेमीचंदजी म०
(१२) ,, वेणीचद जी म० (आप बड़े उग्र तपस्वी थे, आपने वर्षो तक केवल छाछ पर ही निर्वाह किया)
(१३) पूज्य श्री परताप चन्द जी म०
(१४) ,, कजोडी मलजी म०, श्री छोगालाल जी म०। मोहन मुनि अभी विद्यमान हैं।

सती जसकंवर जी इस सप्रदाय की आचार निष्ठ और प्रभावशीला आर्या है ।

शाखा ५ और उसकी आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री जीवराज जी म०
(२) ,, लाललन्द जी म०
(३) ,, मनजी ऋषि म०
(४ ,, नाथूरामजी म० (जिनके नाम से अभी सम्प्रदाय चलती है)
(५) ,, लखमीचद म०
(६) ,, छीतरमलजी म०
(७) ,, रामलालजी म०
(८) ,, फकीरचन्द जी म०
(९) धर्मोपदेष्टा मुनि श्री फूलचन्दजी म० आदि अभी विद्यमान है ।
मुनि सुशीलकुमार जी भी इसी परम्परा के ख्यातनामा संत है ।

इसकी भी एक उपशाखा है, जिसमे मुनि श्री कुन्दनमलजी आदि इस प्रकार है:—

१. पूज्य रामचन्द्र जी	५. पूज्य विहारीलालजी
२ ,, रतीरामजी	६ ,, महेशदासजी
३. ,, नदलालजी	७. ,, वखभाणजी
४. ,, रूपचंदजी	८ ,, कुंदनमलजी

इन सभी शाखाओ मे अभी कई वर्षो से आचार्य परम्परा उठ जाने से प्रवर्त्तक आदि पद-धारक मुनिराज ही सम्प्रदाय की व्यवस्था चलाते है ।

(परिशिष्ट)

धर्मोद्धारक श्री धर्मसिहजी

लोकागच्छ के श्री पूज्य शिवजी म० के समय मे धर्मसिहजी नाम के

एक प्रसिद्ध महापुरुष हुए है, जिनका नाम भारत भर में प्रसिद्ध है। क्योंकि शास्त्रो पर टव्वा लिखकर उन्होंने समाज का सार्वदेशिक उपकार किया है।

इनका जन्म काठियावाड के हालार प्रान्त मे जाम शहर मे हुआ था, जिसको नगर भी कहते है। दशा श्रीमाल जाति के जिनदास आपके पिता और शिवा वाई आपकी माता थी। आपको वचपन से ही सत्संगति से प्रेम था। जव आप १५ वर्ष के थे तव लोकागच्छ के श्री पूज्य रत्नसिहजी के शिष्य श्री देवजी महाराज वहा पधारे। आप नित्य उनके व्याख्यान मे जाया करते थे। उपदेश सुनते सुनते आपको वैराग्य हो गया। लेकिन वहुत समय तक माता पिता ने इन्हे दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति प्रदान नही की जिससे इन्हे रुकना पडा।

आखिर आपकी दृढ भावना का परिणाम यह हुआ कि आपके साथ आपके पिता भी दीक्षित हो गये। आप वडे वुद्धिशाली थे। कहा जाता है कि आप केवल दोनो हाथो से ही नही, अपितु दोनों पावो से भी कलम पकड़ कर लिख सकते थे। कुशाग्र वुद्धि के कारण आपने अल्प समय मे ही शास्त्रो का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। शास्त्रो के पढने से जव आपको मालूम हुआ कि शास्त्र मे भगवान् की आज्ञा कुछ और है और आज के साधु-वर्ग का आचार कुछ दूसरे ही प्रकार का है, तव आपने गुरुजी से निवेदन किया कि—"महाराज। आज का साधुवर्ग भगवान् की आज्ञा से वहुत उल्टा चल रहा है, इसलिये हमको गच्छ का मोह छोडकर कष्टो और विरोधो का मुकावला करना पडेगा, शासन सेवा के लिये हमे उनकी परवाह नही करनी चाहिये। यदि आप मुझे साथ दे तव तो वहुत ही अच्छी बात है, अन्यथा मुझे आज्ञा दीजिये, मै अपने शरीर का वलिदान देकर भी धर्म सेवा करने को तैयार हूं।"

गुरुजी ने कहा—"अच्छा, यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो एक काम करो। आज की रात तुम शहर अहमदावाद के वाहर दरिया खान के स्थान पर विताओ, फिर मै खुशी से तुम्हे स्वीकृति दे दूंगा।"

धर्मसिहजी ने वैसा ही किया। दरिया पीर के उस भयंकर स्थान में

रात को कोई भी नहीं रह पाता था, लेकिन धर्मसिहजी ने अपनी दृढ भावना और आत्मबल से पीर को भी शात कर दिया। उन्होने कुशलता-पूर्वक रात दरिया पीर की दरगाह मे बिताई।

प्रातः काल कुछ दिन चढने के बाद वे कालूपुर के उपाश्रय मे गुरुजी के पास आये और विनय से सब बात कह सुनाई।

गुरुजी भी इनकी दृढता और निर्भीकता से प्रसन्न हुए और बोले—"भाई! मैं तो वृद्ध हो जाने के कारण कष्ट सहने में लाचार हूँ तथा मुझसे गृह गच्छ और यह वैभव नही छूटता। परन्तु तुम्हारी अन्त करण से यही इच्छा है तो जाओ और निर्भय होकर शासन की सेवा करो। तुम्हारा संयम निभ सकेगा।"

गुरु की आज्ञा से संतुष्ट होकर धर्मसिह जी दरियापुर दरवाजे के बाहर आये और अन्य आत्मार्थी यतियो के साथ स० १६६२ में ईशान कोण के बाग मे शुद्ध सयम स्वीकार किया।

आप ऐसे विलक्षण बुद्धि वाले थे कि एक ही दिन मे आपने और आपके शिष्य मुनि सुन्दरजो ने मिलकर १००० श्लोको के ग्रन्थ को कंठाग्र कर लिया। शारीरिक कारण से भ्रमण कम होने पर भी आपने शासन की अपूर्व सेवा की।

पार्श्वचन्द्राचार्य की तरह आपने भी शास्त्रो पर बाल बोध अर्थ के टव्वे किये। वाडीलाल मोतीलाल शाह ने आपके द्वारा २७ सूत्रो पर टव्वे किये जाने का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त—

१. भगवती,
२ पन्नवणा
३. ठाणाग,
४. रायप्पसेणिय,
५, जीवाभिगम,
६. जम्बूद्वीपपन्नत्ति,
८. सूरपन्नत्ति के यन्त्र,
६. व्यवहार की हुँडी,
१०. सूत्र समाधि की हुंडी,
११. सामायिक चर्चा,
१२. द्रौपदी की चर्चा,
१३. साधु समाचारी,

७. चन्दपन्नात्त, १४ चन्दपन्नत्ति की टीप

आदि ग्रन्थ भी आप द्वारा प्रणीत किये गये बताये जाते है। आपका सयम काल १६८५ से १७२८ का माना जाता है। आसोज सुद्धि ४ सं० १७२८ को आप स्वर्गवासी हुए।

आपके दशम पट्टधर पूज्य श्री प्रागजी के समय मे धर्म का वडा उद्योत हुआ। इनके समय मे अहमदावाद मे साधुओं का आना वडा कठिन था।

एक समय आप सारंगपुर तलिमा की पोल मे गुलाव चद हीराचन्द के मकान पर ठहरे हुए थे। आपके उपदेश से उस समय कई लोगो ने शुद्ध श्रद्धा धारण की। इससे प्रतिपक्षियो मे ईर्ष्या उत्पन्न हुई।

आखिर सं० १८७८ मे कोर्ट मे जोरो से चर्चा शुरु हुई। इस ओर से मारवाड के पूज्य श्री रूपचन्दजी के शिष्य जेठ मलजी तथा कच्छ काठिया-वाड के २८ साधु थे और प्रतिपक्ष मे मूर्ति पूजक सप्रदाय के वीर विजयजी आदि मुनि तथा पंडित थे। सं० १८७८ की पौष सुदि १३ को फैसला हुआ। मुनि श्री जेठमलजी ने युक्तिपूर्वक अपने मत का सबल एवं सम्यक् प्रतिपादन किया और शासन की महिमा को वढाया। आपकी परम्परा खास कर गुजरात की सम्प्रदाय से ही सम्वन्ध रखती है। धर्मसिहजी का दरियापुरी सघाडा आज भी प्रसिद्ध है।

दरियापुरी समुदाय की आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री धर्मसिहजी महाराज
(२) ,, सोमजी ऋषि ,,
(३) ,, मेघजी ऋषि ,,
(४) ,, द्वारिकादासजी ऋषि महाराज
(५) ,, मोरारजी ,, ,,
(६) ,, नाथाजी ,, ,,
(७) ,, जयचन्दजी ,, ,,

(८) पूज्य श्री मोरारजी ,, ,,
(९) ,, नाथाजी ,, ,,
(१०) ,, प्रागजी ,, ,,
(११) ,, शंकर जी ,, ,,
(१२) ,, खुशालजी महाराज
(१३) ,, हरखचन्दजी महाराज
(१४) ,, मोरारजी ,
(१५) ,, भवेरचन्दजी ,, (आप स० १९२३ मे वीरम गाव मे स्वर्गवासी हुए)
(१६) पूज्य श्री पूंजा जी ऋषि महाराज (स० १९१५ मे स्वर्गवास हुए)
(१७) ,, नाना भगवान जी ,,
(१८) ,, मलूकचन्दजी ,,
(१९) ,, हीराचन्दजी ,,
(२०) ,, रघुनाथ जी ,,
(२१) ,, हाथो जी .
(२२) ,, उत्तम चन्द जी ,,
(२३) ,, ईश्वरलालजी महाराज
(२४) ,, चुन्नीलाल जी ,, ।

पूज्य लवजी ऋषि महाराज

सत्रहवी शताब्दी मे सूरत के दशा श्रीमाल सेठ वीरजी एक बड़े प्रातष्ठित व्यवसायी और ख्यातनामा सेठ थे। उनकी फूला वाई नामकी एक पुत्री थी। फूला वाई वालविधवा होने से पिता के घर पर ही रहती थी, इसलिये लवजी का पालन-पोषण भी वही हुआ

लवजी बचपन मे लोका के उपाश्रय मे पढने को जाते थे। जिससे एक दिन इनको विरक्ति हो गई। लेकिन सेठ वीरजी की आज्ञा लोंकागच्छ मे ही दीक्षा लेने की थी, इसलिये उन्होने तत्काल वज्रांग जी के पास ही

दीक्षा ली। दो वर्ष के वाद सयम मार्ग की शास्त्र से जानकारी होने पर इन्होने गुरु से निवेदन किया और थोमणजी व सखा जी को साथ लेकर स० १६९२ मे खभात मे शुद्ध सयम मार्ग को स्वीकार किया।

लवजी के दीक्षा समय पर विभिन्न प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते है। पर इतिहास के सदर्भ को देखते हुए सं० १६९२ के आसपास ही इनका दीक्षित होना उचित जचता था।

आचार्य लवजी महाराज से सम्बन्धित समुदायें

आपकी शाखा मे अभी चार समुदाये विद्यमान है।

(१ हरदास जी के पदानुसारी पूज्य श्री अमरसिह जी महाराज का समुदाय (पंजाब)
(२) पूज्य श्री कानजी ऋषि का समुदाय,
(३) „ तारा ऋषि जी महाराज का समुदाय (गुजरात)
(४) „ रामरतनजी „ „

इनकी आचार्य परम्परा क्रम से बताई जाती है :—

(परिशिष्ट)

पहले समुदाय की आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री लवजी ऋषि
(२) „ सोमजी ऋषि
(३) „ हरिदास जी
(४) „ वृन्दावनजी स्वामी
(५) „ भगवान (भवानी) दासजी महाराज
(६) „ मलूकचदजी महाराज लाहोरी (आप बड़े उग्र-मार्गी थे),

(७) पूज्य श्री महासिहजी महाराज (जो सवत् १८६१ में सथारा कर के स्वर्ग सिधारे)
(८) पूज्य श्री कुशलचन्द्रजी महाराज
(९) ,, छजमलजी ,,
(१०) ,, रामलालजो ,,
(११) ,, अमरसिहजी ,,
(१२) ,, रामबक्स जी ,,
(१३) ,, मोतीरामजी ,,
(१४) ,, सोहनलालजी ,,
(१५) ,, काशीरामजी ,,
(१६) ,, आत्मारामजी महाराज जो वर्तमान श्रवणसंघ के आचार्य थे।

श्री हरिदासजी लाहोरी, लोकागच्छ के यति थे और बड़े आत्मार्थी थे। किसी समय ये संयोगवश गुजरात आए। वहा पर उनका और सोमजी ऋषि का समागम हुआ। परस्पर धर्म-चर्चा से सतोष हो जाने पर हरिदास जी ने सोमजी के पास शुद्ध जैन धर्म दीक्षा धारण कर ली। कुछ समय गुरु सेवा मे ज्ञान सम्पादन करके फिर ये पंजाब चले गये। वहां उनके शिष्यो की संख्या मे बडी वृद्धि हुई।

दूसरे समुदाय की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री लवजी ऋषि
२. ,, सोमजी ,,
३. ,, कानजी ,,
४. ,, ताराचन्द जी
५. ,, काला ऋषि जी
६ ,, बक्सु ,,
७ ,, धन्ना ,, (पृथ्वी ऋषि जी)
८. ,, तिलोक ,,

९. मुनि श्री दौलत „ श्री अमी ऋषि जी आदि कई विद्वान् संत हुए।
१० पूज्य श्री अमोलख „ महाराज (आप ३२ शास्त्रो के पहले अर्थकार है),
११. „ देवजी ऋषि महाराज
१२. „ आनन्द ऋषि जी महाराज जो वर्तमान मे श्रमणसंघ के आचार्य है।

तीसरे समुदाय की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री लवजी ऋषि महाराज
२. „ सोमजी „
३. „ कानजी „
४. „ तारा ऋषिजी महाराज
५ , मंगल „ „
६. „ रणछोड जी „
७. „ नाथाजी ,
८. „ बेचरदास जी „
९. „ बडे माणक चंदजी महाराज
१०. „ हरखचन्दजी „
११. „ भाणजी „
१२. „ गिरधरजी „
१३ „ छगनलालजी महाराज। श्री कान्ति ऋषि जी आदि विद्यमान है। यह खंभात समुदाय के नाम से गुजरात मे प्रसिद्ध है।

चौथे समुदाय की आचार्य परम्परा

(१) पूज्य रामरतनजी महाराज की संप्रदाय मालवा में है। इसकी यह परम्परा प्राप्त न होने के कारण यहा उल्लेख नही किया गया है। हमारे खयाल से मालवा का यह समुदाय पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज की शाखा मे होना चाहिये, जिसमे कि मुनि श्री मोतीलालजी और युवक

हृदय धनचन्द जी महाराज आदि विद्यमान है।

धर्मोद्धारक श्री हरजी महाराज

श्री हरजी महाराज कुंवरजी के गच्छ से निकल कर धर्मोद्धार करने वाले ६ महापुरुषो मे से एक हैं, जिनका समय १६८६ के बाद का होना प्रतीत होता है। प्रभु वीर पट्टावली मे सं० १७८५ के बाद हरजी के क्रिया उद्धार का उल्लेख उपलब्ध होता है, परन्तु ऐतिहासिक घटनाओ के साथ इसका मेल नही खाता [1]। अतः संवत् १६८६ के आसपास ही इनका क्रिया उद्धार का काल होना माननीय है।

हरजी महाराज से भी कुछ मुख्य शाखाए प्रकट हुईं, जो कोटा समुदाय और पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की समुदाय के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन शाखाओ की आचार्य परम्परा इस प्रकार है.

शाखा (अ) कोटा समुदाय की आचार्य परम्परा

(१) पूज्य हरजी ऋषि
(२) पूज्य गोदाजी महाराज
(३) पूज्य परसरामजी महाराज
(४) पूज्य लोकमणजी महाराज
(५) श्री माया रामजी महाराज
(६) पूज्य दौलतरामजी महाराज
(७) पूज्य श्री गोविन्दरामजी महाराज
(८) श्री फतेहचन्दजी महाराज

---

(१) पूज्य श्री हरदासजी महाराज के अनुयायी श्री मलूकचदजी महाराज तथा पूज्य श्री परसरामजी महाराज के अनुयायी श्री खेतसीजी व खीवसीजी महाराज आदि पचेवर ग्राम मे एकत्रित हुए और पूज्य श्री अमरसिहजी महाराज के साथ सम्भोग सहयोग कर एक सूत्र मे बंध गये। अमर सूरि चरित्र पृ० ३९।

(९) श्री ज्ञानचन्दजी महाराज
(१०) पूज्य छगनलालजी महाराज
(११) श्री रोड़मलजी महाराज
(१२) श्री पेमराजजी महाराज
(१३) श्री गरोशमलजी महाराज (खादी वाले)

आदि दक्षिण मे विचरते है। श्री रामकुमारजी महाराज के शिष्य राम निवासजी माधोपुर की तरफ विचरते है।

शाखा (आ) कोटा समुदाय की आचार्य परम्परा

(१) श्री हरदासजी महाराज
(२) पूज्य श्री गोदाजी महाराज
(३) पूज्य श्री परसरामजी महाराज
(४) पूज्य श्री खेतसीजी
(५) पूज्य श्री खेमसीजी
(६) श्री फतेहचन्दजी
(७) श्री अनोपचन्दजी महाराज (सम्प्रदाय इनके नाम से चलती है)
(८) श्री देवजी महाराज
(९) श्री चम्पालालजी महाराज
(१०) श्री चुन्नीलालजी म०।
(११) श्री किशनलालजी म०।
(१२) श्री वलदेवजी म०।
(१३) श्री हरकचन्दजी महाराज मुनि मागीलालजी महाराज इनकी परम्परा में अब साधु नही रहे।

परिशिष्ट

द्वितीय शाखा पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की समुदाय के

(अ) विभाग की आचार्य परम्परा

श्री पूज्य केशवजी। श्री कु वरजी यति।

(१) पूज्य श्री हरजी ऋषि (सं० १७००)
(२) पूज्य श्री गोदाजी महाराज
(३) ,, फरसुरामजी ,,
(४) ,, लोकमलजी ,,
(५) ,, मायारामजी ,,
(६) ,, दौलतरामजी ,,
(७) ,, लालचन्दजी ,,
(८) ,, हुक्मीचन्दजी जिनके नाम से सम्प्रदाय चलती है।
(९) ,, शिवलालजी ,
(१०) ,, उदयसागरजी ,,
(११) ,, चौथमलजी ,,
(१२) ,, श्रीलालजी ,,
(१३) ,, जवाहरलालजी ,,
(१४) ,, गणेशीलालजी ,, (जो श्रमण संघ के उपाचार्य थे।) अब संघ से पृथक उनके पट्ट पर पूज्य नानालालजी महाराज विद्यमान है।

शाखा (ब) की आचार्य परम्परा

(१२) पूज्य श्रीलालजी महाराज
(१३) ,, मन्नालालजी ,,
(१४) ,, खूबचन्दजी ,,
(१५) ,, छगनलालजी महाराज। वर्तमान में स्थविर किस्तूरचन्द जी महाराज विद्यमान है।

पंचम धर्मोद्धारक श्री धर्मदासजी महाराज

आपका जन्म अहमदाबाद के पास सरखेज मे हुआ था। उस समय वहाँ पर भावसार जाति के ७०० घर थे जो लोकागच्छ को मानने वाले थे। उन सब मे जीवदास कालीदास प्रमुख थे। उनकी डाही बाई नामक सुशीला पत्नी से संवत् १७०१ मे आपका जन्म हुआ।

वचपन से ही आपका मन धर्म में रगा हुआ था। इसलिये आपके माता पिता ने आपका नाम धर्मदास रखा। आठ वर्ष की आयु मे जव आप पौशाल जाने लगे तव केशवजी के पक्ष के लोकागच्छीय यति श्री पूज्य तेजसिहजी का सरखेज मे पधारना हुआ। धर्मदासजी भी उनकी सेवा में जाने लगे। धार्मिक ज्ञान की शिक्षा लेने से उनको ससार से विरक्ति हो गई।

कुछ समय के वाद वहाँ कल्याणजी नामके पोतियावन्ध श्रावक (एकलपातरी) आये। उनके नवीन उपदेश को सुनने के लिए लोगो के साथ धर्मदासजी भी गये और उपदेश सुन कर वहुत सन्तुष्ट हुए। कल्याणजी श्रावक के आचार विचार से धर्मदासजी वडे प्रभावित हुए। कही कही यह भी उल्लेख मिलता है कि वे आठ वर्ष तक पोतियावन्ध श्रावक रहे।

एक वार भगवती सूत्र का वाचन करते समय उनको ऐसा पाठ मिला कि भगवान् महावीर का शासन २१ हजार वर्ष तक चलेगा। जव धर्मदासजी को यह प्रतीत हो गया कि इस समय भी शुद्ध संयम एव मुनि धर्म का आरावन किया जा सकता है तो आप सच्चे सयमी की खोज मे निकल पड़े और सर्वप्रथम श्री लवजी ऋषि से मिले, फिर अहमदावाद मे श्री धर्मसिहजी महाराज के साथ भी आपका समागम हुआ।

श्री धर्मसिहजी महाराज के साथ आपकी तत्त्वचर्चा भी हुई। मालवे की कुछ पट्टावलियो मे लिखा है कि धर्मदासजी ने श्री कानजी महाराज के पास सूत्राभ्यास किया। लेकिन अपनी सत्रह वाते मान्य नही होने से उन्होने श्री कानजी महाराज के पास दीक्षा नही ली। कानजी महाराज श्री सोमजी के शिष्य हुए है और प्रभु वीर पट्टावली के लेखानुसार इनकी दीक्षा श्री लवजी ऋषि के स्वर्गारोहण के बाद मानी गई है। ऐसी दशा मे श्री कानजी के पास धर्मदासजी का ज्ञानाभ्यास आदि विचारणीय है।

परन्तु यह निर्विवाद है कि कुछ मतभेद होने के कारण आपने श्रीधर्मसिहजी के पास दीक्षा ग्रहण नहीं की। दीक्षा के वाद धर्मदासजी को

तेले के पारणे में सर्वप्रथम एक कुम्हार के यहा से राख की भिक्षा मिली। उसको छाछ मे घोलकर धर्मदासजी पी गये। दूसरे दिन जब धर्मसिहजी महाराज को वन्दन करने के लिये आप गये और पारणा में मिली हुई राख की भिक्षा का हाल उनकी सेवा मे निवेदन किया।

यह सब सुनकर धर्मसिहजी महाराज ने उनसे कहा, "महात्मन्! राख की तरह तुम्हारा शिष्य समुदाय भी चारो दिशाओ मे फैलेगा और चारों ओर तुम्हारे उपदेशो का प्रचार एव प्रसार करेगा।"

श्री धर्मसिहजी द्वारा की गई उक्त भविष्य—वाणी के अनुसार धर्मदासजी के शिष्यों की खूब वृद्धि हुई, आपके ९९ शिष्य हुए जिनमें से २२ पडित और प्रभावशाली थे।

सवत् १७२१ माघ शुक्ला पचमी के दिन उज्जैन मे श्री सघ ने आपको आचार्य पद प्रदान किया। उसके वाद आपने वर्षो तक सत्य धर्म का प्रचार एव प्रसार किया और इस कालावधि में कुल ९९ शिष्यो को अपने हाथ से जैन मुनि परम्परा की दीक्षा प्रदान की।

सम्वत् १७५९ में एक घटना हुई। उस समय एक जैन मुनि ने जीवन का अन्त समय समझ कर संथारा कर लिया था, वह सथारे से डिगने लगा तब आप वहा (धार शहर) जाकर उसकी जगह संथारा कर बैठे और आठवे दिन सं० १७५९, आषाढ शु० ५ की सध्या को ५९ वर्ष की आयु मे स्वर्गवासी होगये। आपके स्वर्गवास के वाद मूलचन्द जी आदि २२ मुनि धर्म प्रचार के लिये विभिन्न प्रान्तो मे स्वतन्त्र रूप से विचरने लगे। तब इन २२ मुनियो के आश्रय मे रहने वाला साधु समूह भी बाईस समुदाय के नाम से लोक मे प्रसिद्ध हो गया।

बाईस समुदाय के नायक मुनि

१. पूज्य श्री मूलचन्द जी महाराज
२. „ धन्ना जी „
३. „ लालचन्द जी „

४. पूज्य श्री मन्ना जी महाराज
५. ,, मोटा पृथ्वीराजजी ,,
६. ,, छोटा पृथ्वीचन्द जी ,,
७. ,, वालचन्द जी ,,
८. ,, ताराचन्द जी ,,
९. ,, प्रेमचन्द जी ,,
१०. ,, रेवतसीजी ,,
११. ,, पदार्थ जी ,,
१२. ,, लोकमलजी ,,
१३. ,, भवानीदास जी ,,
१४. ,, मलूकचन्द जी ,,
१५. ,, पुरुषोत्तमजी ,,
१६. ,, मुकुटरामजी ,,
१७. ,, मनोहरदासजी ,,
१८. ,, रामचन्द्र जी ,,
१९. ,, गुरुसदा साहवजी ,,
२०. ,, वाघ जी ,,
२१. ,, रामरतन जी ,,
२२. ,, मूलचन्द जी ,,

हस्तलिखित पट्टावली में उपरोक्त वाईस नामों का उल्लेख कुछ भिन्न तरह से मिलता है। उसमे पहिले श्री धर्मदास जी महाराज और इक्कीसवे श्री समरथजी का उल्लेख है। रामरतन जी का नाम नही मिलता ऊपर की नामावलि मे भी श्री मूलचन्द जी महाराज का नाम दो वार भ्रान्ति से लिखा हुआ मालूम होता है। इन वाईस पूज्यो मे से केवल १, २, ६, १७ और १८ वे ऐसे पाच पूज्यो की ही समुदाये आज वर्तमान है।

पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज से सम्बन्धित समुदायें

पज्य श्री धर्मदास जी महाराज के शिष्य श्री मूलचंद जी महाराज

की समुदाय से समय पाकर कई शाखा-उपशाखाए निकल पड़ी जिनमे वर्तमान ६ उपशाखाएं निम्न प्रकार है :—

पूज्य मूलचंद जी महाराज के सात शिष्य हुए जिनमेसे ६ के समुदाय विद्यमान है, जो

१. लीमड़ी
२. गोडल
३. वरवाला
४. बोटाद
५ सायला, और
६. कच्छ समुदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें लीमडी, गोडल और कच्छ की समुदाये मोटी पक्ष तथा नानी पक्ष के रूप मे दो भागो मे वटी हुई है। उन तीनो को वढा देने पर ये ६ शाखा-उपशाखाएं हो जाती है।

प्रत्येक की पट्टावली

(१) लीमड़ी समुदाय की आचार्य परम्परा —

१. पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज
२. ,, मूलचन्दजी ,,
३ ,, पचांणजी ,,
४ ,, इच्छा जी ,, (इनसे लीमडी समुदाय चला)
५. ,, हीराजी स्वामी (स० १८३३ मे आचार्य पद)
६ ,, नान कानजी महाराज (सं० १८४१ मे आचार्य पद)
७ ,, अजरामरजी ,, (सं० १८४५ मे आचार्य पद)
८. ,, देवराजजी ,,
९ ,, गुलावचन्द जी महाराज।

---

(१) पूज्य इच्छा जी महाराज के लीमडी विराजने से यह लीमड़ी समुदाय कहलाने लगा।

सं० १८४४ तक समूचे काठियावाड में पूज्य धर्मदास जी महाराज का एक ही समुदाय था। कहा जाता है कि उसमें तीन सौ मुनि थे लेकिन पूज्य अजरामरजी महाराज के समय मे ३२ बोल की मर्यादा बान्धने पर कुछ अन्तरंग कारणो से वह समुदाय छः भागो मे विभक्त हो गया, जो—

१. लीमड़ी
२ गोंडल
३. ध्रागध्रा
४. वरवाला
५. चूड़ा और
६. सायला की गादी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१ लीमड़ी समुदाय

पूज्य देवजी स्वामी के समय में स० १९१५ में लीमड़ी समुदाय के दो भाग हो गये। दूसरे विभाग की आचार्य परम्परा इस प्रकार हैं:—

१. पूज्य श्री अजरामर जी स्वामी
२. „ देवराजजी „
३. „ अविचलदासजी स्वामी
४. „ हिमचन्द जी „
५. „ गोपाल जी „ (आप वडे प्रतापी हुए)
६. „ मोहनलाल जी „
७. „ मणिलाल जी अभी विद्यमान है।

२. गोंडल समुदाय

मूलचन्द जी महाराज के दूसरे शिष्य श्री पचांणजी महाराज के शिष्य रतन जी स्वामी हुए। उनके शिष्य डूंगरसी स्वामी संवत् १९४५ मे लीमडी से गोंडल पधारे तव से गोडल समुदाय की स्थापना हुई। डूंगरसी की मौजूदगी मे ही गोंडल समुदाय के दो भाग हो गये जिनमे से दूसरा भाग संघाणी संघाड़ा (समदाय) के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

आचार्य परम्परा

(क) विभाग की

१. पूज्य श्री मूलचन्द जी स्वामी
२. „ पचाण जी „
३. „ रतन जी „
४ „ डूगरशी स्वामी।

(ख) विभाग में अभी कोई साधु नही है।

३ बरवाला संघाड़ा

पू० श्री बनारसी जी स्वामी के शिष्य श्री कान जी स्वामी बरवाला गाव पधारे। तब बरवाला समुदाय की स्थापना हुई।

आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज
२ „ मूलचन्दजी „
३. „ बनाजी „
४. „ पुरुषोत्तमजी „
५. „ बनारसी जी „
६ „ कानजो „
७. „ रामरखा जी „
८. „ चुन्नीलालजी „
९. „ कविवर्य श्री उम्मेदचन्द जी महा०
१० „ मोहनलालजी महा० विद्यमान है।

बनारसी जी महा० के शिष्य जैसिहजी और उदेसिहजी स्वामी के चुडा नामक ग्राम में जाने से एक चुडा समुदाय (सघाड़ा) की भी स्थापना हुई, परन्तु अभी साधु न होने से वह सघाड़ा बन्द है।

४. बोटाद संघाड़ा

पडित विट्ठल जी स्वामी के शिष्य भूषण जी स्वामी मोरवी पधारे और उनके शिष्य पूज्य वसरामजी "ध्रागध्रा" पधारे। तब से "ध्रागध्रा" संघाडा कहलाने लगा।

श्री निहालचन्द जी के बाद वह समुदाय वन्द हो गया परन्तु पूज्य वसरामजी के एक शिष्य पू० जसाजी महा० वडे प्रतापी और आत्मार्थी हुये थे। कारणवशात् जब वे "ध्रागध्रा" से बोटाद पधारे तब वे बोटाद समुदाय के नाम से कहलाने लगे।

आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज
२ ,, मूलचन्द जी ,,
३ ,, विट्ठलजी ,,
४. ,, हरखजी ,,
५ ,, भूषण जी ,,
६ ,, रूपचन्द जी ,,
७ ,, वसरामजी ,,
८ ,, जसाजी ,,
९ ,, अमरसिंह जी महा०।

श्री मूलचन्द जी स्वामी आदि अभी विद्यमान है।

५ सायला समुदाय

सवत् १८२९ की साल मे पू० श्री नागसी स्वामी आदि ठाणा चार सायला पधारे और वहा गादी-स्थापना की। तब से यह सायला समुदाय कहलाने लगी।

आचार्य परम्परा—

१. पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज

२. „ मूलचन्द जी „
३. „ गुलाब चन्द जी „
४. „ वाल जी „
५. „ नागजी „ (मोटा तपस्वी)
६. „ मूलजी „
७. „ देवचन्द्र जी „
८ „ मेघराजजी „
९. „ सन्ध जी „
१०. मुनि श्री हरजीवन जी महाराज आदि मौजूद है।
११ पूज्य मुनि श्री मगनलाल जी महाराज
१२. „ लक्ष्मीचन्दजी महाराज
१३ „ कान जी महाराज
१४ „ कर्मचन्द जी महाराज।

६. कच्छ आठ कोटि (मोटी पक्ष)

प० श्री इन्द्र जी महा० के शिष्य पू० श्री कुरसन जी स्वामी कच्छ देश मे पधारे और आठ कोटि की प्ररूपणा की। तब से कच्छ आठ कोटि समुदाय की स्थापना हुई। कालान्तर मे कच्छ समुदाय के भी दो विभाग हो गये।

(१) आठ कोटि मोटी पक्ष और
(२) आठ कोटि नानी पक्ष।

आठ कोटि मोटी पक्ष की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज
२ „ मूलचन्द जी „
३ „ इन्द्रजी „
४ „ सोमचन्द जी „
५ „ भगवान जी „
६ „ थोमणजी „

७. , करसन जी ,,
८. ,, देवकरण जी ,,
९. ,, डाह्याजी ,,
१०. ,, देवजी ,,
११. ,, रगजी ,,
१२. ,, केशव जी ,,
१३. ,, करमचन्द जी ,,
१४. ,, देवराजजी ,,
१५. ,, मौणसी जी ,,
१६ ,, करमसी जी ,,
१७. ,, व्रजपाल जी ,,
१८. ,, कानमल जी ,,
१९. युवाचार्य श्री नागचन्द जी महा० ।

(कालक्रम से कच्छ समुदाय में भी विभाग हो गये जिनमे (१) आठ कोटि मोटी पक्ष और (२) आठ कोटि नानी पक्ष)

आठ कोटि नानी पक्ष की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री करसनजी महाराज
२. ,, डाह्याजी ,,
३. ,, जसराजजी ,,
४. ,, वस्ताजी ,,
५ ,, हंसराजजी ,,
६. ,, व्रज पाल जी ,,
७. ,, डूगरशी जी ,,
८. ,, सामजी ,, विद्यमान है।

१८५६ की साल में छ कोटि और आठ कोटि की तकरार होने से सघ मे फूट पड गई। दोनो के धर्म-स्थान अलग-अलग कर दिये गये।

कहा जाता है कि अभी कई वर्षो से उसकी चर्चा न होने से संघ मे शान्ति है।

(परिशिष्ट)

पूज्य श्री धन्नाजी महाराज का परिवार

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के शिष्यो मे श्री धन्नाजी महाराज भी एक प्रमुख थे। आपका जन्म मारवाड के सांचोर ग्राम में मूथा वाघा शाह के यहा हुआ था। सं० १७२७ में पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के पास आपने दीक्षा ली। आप वड़े तपस्वी ओर ज्ञानी थे। गुजरात से मारवाड़ में पधार कर आपने वड़ा धर्मोद्योत किया। मारवाड के मेड़ता ग्राम मे आपका स्वर्गवास हुआ था। आपके वड़े शिष्य पूज्य भूधरजी महाराज[1] हुए, जिनकी शिष्य परम्पराएं आज भी विद्यमान है।

पूज्य भूधरजी महाराज का जन्म मारवाड़ के ग्राम सोजत मे हुआ। आपने सवत् १७७३ मे पूज्य श्री धन्नाजी के पास दीक्षा ली और सवत् १८०४ में स्वर्गवासी हुए। आपके ४ वड़े शिष्य हुए जिनकी शिष्य परम्पराएं इस प्रकार हैं :—

आचार्य भूधरजी महाराज की परम्पराएं

(१) पूज्य श्री रघुनाथजी महाराज की समुदाय की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री धन्नाजी महाराज
२. ,, भूधरजी ,,
३. ,, रघुनाथजी ,,
४. ,, टोडरमलजी ,,
५ ,, दीपचन्दजी ,,
६. ,, भैरोदासजी ,,
७. ,, जैतसीजी ,,
८. ,, फौजमलजी ,,
९. ,, संतोषचन्द्रजी ,,

---

(१) आप वड़े तपस्वी और प्रभावशाली आचार्य थे।

१०. पूज्य श्री मोतीलालजी महाराज
११. „ श्री रूपचन्दजी „

उपशाखाएं

चौथे पूज्य श्री टोडरमलजी महाराज के द्वितीय शिष्य इन्द्रमलजी के बाद दूसरे पाट से दो प्रतिशाखाएं निकली, जिनमें महान् तपस्वी श्रीभानमलजी और बुधमलजी महाराज हुए। बुधमलजी महाराज के शिष्य मरुधर केसरी मिश्रीलालजी महाराज विद्यमान है।

पूज्य श्री भैरूदासजी महाराज के समय श्री चौथमलजी महाराज अलग हुए और इनसे पूज्य चौथमलजी महाराज की पृथक् शाखा कही जाने लगी। इस परम्परा के सम्बन्ध में आगे बताया जा रहा है।

(२) पूज्य श्री जैतसीजी महाराज की दूसरी परम्परा

इस परम्परा मे श्री उम्मेदमलजी महाराज, श्री सुलतानमलजी महाराज, तपस्वी श्री चतुर्भुजजी महाराज हुए। आगे साधु परम्परा नही रही।

पूज्य श्री जयमलजी महाराज की समुदाय की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री जयमलजी महाराज
२ „ रायचन्द्रजी „
३. „ आसकरणजी „
४. „ सबलदासजी „
५. „ हीराचन्द्रजी „
६. „ कस्तूरचन्द्रजी „
७ „ भीकमजी „
८. „ कानमलजी „

पूज्य श्री कानमलजी महाराज के बाद वर्षों तक आचार्य पद रिक्त रहा।

उस समय श्री जोरावरमलजी महाराज के शिष्य श्री हजारीमलजी

महाराज और श्री नथमलजी महाराज के श्री चौथमलजी महाराज तथा श्री मगनमल जी स्वामी के श्री रावतमलजी महाराज, इन तीनो की व्यवस्था में संघ चलता रहा।

मध्यकाल में श्री हजारीमलजी महाराज के प्रिय शिष्य पं० श्री मिश्रीमलजी 'मधुकर' महाराज को आचार्य पद पर पदासीन किया गया। आपका नाम पूज्य श्री जसवन्तमलजी महाराज रखा गया, पर बाद मे पुन. प्रवर्त्तक पद की परम्परा चालू होने पर वि० स० २००९ मे सादडी के अखिल भारतीय स्थानकवासी मुनियो के वृहद् सम्मेलन में जब अखिल भारतीय संगठन के लिए आह्वान हुआ तो इस समुदाय ने श्रमण सघ मे अपना विलय करके एकता के लिए आपने आचार्य पद का त्याग करके एक महान् त्याग का आदर्श प्रस्तुत किया। अभी स्थविर श्री रावतमलजी महाराज, श्री ब्रजलालजी महाराज व श्री जीतमलजी महाराज आदि संत विद्यमान है।

(३) पूज्य श्री कुशलजी महाराज की समुदाय और आचार्य

श्री रत्नचंदजी महाराज की आचार्य परम्परा

१ पूज्यपाद श्री कुशलजी महाराज
२ पूज्य श्री गुमानचन्द्रजी महाराज
३. ,, दुर्गादासजी ,,
४. पूज्य आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी महाराज (आपके द्वारा क्रिया उद्धार करने के कारण सवत् १८५४ मे आपके नाम से समुदाय चलने लगा)
५ पूज्य श्री हमीरमलजी महाराज
६. ,, कजोड़ीमलजी ,,
७ ,, विनयचन्दजी ,,
८. ,, शोभाचन्दजी ,,
९. ,, हस्तीमलजी महाराज जो वर्तमान मे विद्यमान है।

(४) पूज्य श्री चौथमलजी महाराज की परम्परा

१. पूज्य श्री रघुनाथजी महाराज

२. पूज्य श्री टोडरमलजी महाराज
३. ,, दीपचन्दजी ,,
४. ,, भैरूंदासजी ,,
५. ,, चोथमलजी महाराज (जिनके नाम से सम्प्रदाय कही जाती है)। मुनि श्री शार्दूलसिंहजी महाराज आदि।

श्री छोटा पृथ्वीराजजी महाराज की समुदाय और आचार्य परम्परा

१ पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज
२. ,, छोटा पृथ्वीराजजी ,,
३ ,, दुर्गादासजी ,,
४. ,, हरिदासजी ,,
५. ,, गंगारामजी ,,
६. ,, रामचन्द्रजी ,,
७. ,, नारायणदासजी ,,
८. ,, पूरामलजी ,,
९. ,, रोडमलजी ,,
१०. ,, नरसिंहदासजी ,,
११. ,, एकलिंगदासजी ,,
१२. ,, मोतीलालजी ,,

वर्तमान में अम्बालालजी महाराज आदि विराजमान है।

४. श्री मनोहरदासजी महाराज की समुदाय की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज
२. ,, मनोहरलालजी ,,
३. ,, भागचन्द्रजी ,,
४. ,, शीलारामजी ,,

५. पूज्य श्री रामदयालजी महाराज
६. „ लूणकरणजी „
७. „ रामसुखदासजी „
८. „ ख्यालीरामजी „
९. „ मंगलसेनजी „
१०. „ मोतीरामजी „
११. „ पृथ्वीचन्दजी „ और उपाध्याय अमरमुनिजी आदि विद्यमान हैं।

५. श्री रामचन्द्रजी महाराज की समुदाय

श्री रामचन्द्रजी गोसांईजी के शिष्य थे। पू० श्री धर्मदासजी महाराज के धर्मोपदेश से प्रभावित होकर आपने २७ वर्ष की अवस्था मे संवत् १७५४ में धार नगरी मे दीक्षा ग्रहण की। आप बड़े पण्डित और प्रतिभाशाली सन्त थे। सवत् १८०३ मे समाधिपूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी आचार्य परम्परा इस प्रकार है :—

१. पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज
२ „ रामचन्द्रजी „
३. „ माणकचन्द्रजी „
४ „ जसराजजी „
५. „ पृथ्वीचन्द्रजी „ (मायाचन्द्र जी महाराज)
६ „ अमरचन्द्रजी „ बडे
७. „ अमरचन्द्रजी „ छोटे
८. „ केशवजी „
९. „ मोखमसिंहजी „
१०. „ नन्दलालजी „
११. „ माधव मुनिजी „
१२. „ चम्पालालजी „
१३. वयोवृद्ध श्री ताराचन्द्रजी महाराज
१४. श्री किशनलालजी „

वर्तमान मे मधुरव्याख्यानी श्री सोभागमलजी महाराज आदि विद्यमान् है ।

६ छठा समुदाय

यह समुदाय पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के नाम से ही प्रसिद्ध है। इसमें प्रवर्तक ताराचन्द्रजी महाराज आदि विद्यमान है। इसका एक विभाग पूज्य श्री रामरतनजी महाराज की समुदाय और दूसरी श्री ज्ञानचन्दजी महाराज की समुदाय के नाम से, भी प्रचलित है। जिनमे श्री मुनि मोतीलालजी महाराज धनचन्द्रजी महाराज तथा श्री रतनचन्द्रजी व सिरेमलजी महाराज, श्री पूरणमलजी महाराज व श्री इन्द्रमलजी महाराज हुए। प० वहुश्रुत समर्थमलजी महाराज आदि आज विद्यमान है।

गुजरात के इतिहास और पट्टावली मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि धर्मदासजी महाराज के समय में "बावीस" समुदाय नामक धार्मिक सस्था का आविर्भाव हुआ। श्री धर्मदासजी महाराज और उनके शिष्य २२ विद्वान् मुनियो ने सत्य सनातन जैन धर्म का रक्षण किया जिससे लोग उसे बावीस समुदाय के नाम से सम्बोधित करने लगे।

श्री जीवराजजी महाराज, लवजी ऋषि और धर्मसिहजी आदि की समुदाय इन २२ से पृथक् थी किन्तु उनकी श्रद्धा व प्ररूपणा समान होने से वे भी आज बाईस समुदाय के नाम से ही पहिचानी जाने लगी। मौलिक २२ मे से केवल ५ आचार्यो की ही समुदाये आज विद्यमान है। उनकी शाखाओ और उपशाखाओ मे से मात्र १२ समुदाये होती है। वैसे अन्य ४ महापुरुपो की ११ समुदायो को मिलाने से २३ होती है। फिर पहले और दूसरे वर्ग की ६ उप समुदायो को मिला दिया जाय तो २८ होती है।

सादडी (मारवाड) सम्मेलन के बाद राजस्थान की बहुत सी सम्प्रदाये श्रमणसघ मे विलीन हो गई। सौराष्ट्र श्रमणसंघ तब भी अलग रहा और मारवाड़ मे पूज्य ज्ञानचन्दजी महाराज की परम्परा के सत भी

श्रमणसघ मे सम्मिलित नही हुए। जो संत श्रमणसंघ में मिले थे वे भी अधिकाशत संतोपजनक सघ-व्यवस्था के अभाव मे श्रमणसघ से पृथक् हो गये। इस प्रकार आज स्थानकवासी परम्परा मे पूर्व की सम्प्रदायो के साथ श्रमणसंघ भी एक पृथक् सम्प्रदाय का रूप धारण कर बैठा है।

अनुक्रमणिका

क. आचार्य मुनि, राजा, श्रावकादि

भ

म

श

स

ख. ग्राम, नगर, प्रान्त, स्थानादि

द

ध

न

प

फ

ब

भ

म

र

ग. गण, गच्छ, शाखा, वंशादि

घ. सूत्र, ग्रन्थादि

शुद्धि–पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	५	केवल सिज्जण	केवल सिज्जणा
४	६	ओहारक	आहरक
५	११	लगा	लगे
७	२२	खेलता	खेलना
७	२२	कूदता	कूदना
९	२९	आराघन	आराधन
१६	२०	वे	—
१७	७	पूरी पंक्ति	--
२१	१	नये	नय
२१	१	समाघान	समाधान
२२	१२	कमल	कमल-पत्र
२२	२६	अतः	—
२३	२८	ठान	ठाना
२५	२७	मनि	मुनि
३३	५	वसा	वैसा
३३	२४	देव ऋद्धि	देवर्द्धि
३४	१६	राम.	रावा०
३६	१९	मे	—
३७	१०	दिवाकर	दिनकर
३९	५	पुनः	—
४६	२५	नेघावी	मेधावी
४९	१	पर	अत
५०	२७	गय्यातरी	शय्यातरी अए
५१	२२	क्योंकि	—
५२	१०	ऐपणा	एपणा
५४	२०	सो पारक	सोपारक
५५	४	विद्याघर	विद्याधर
५५	१३	श्रवण	श्रमण
५७	१३	की	—
५७	२१	विचरते	विचरत
५९	२२	निश्चित	निश्चित किया
६०	१९	उदयगुप्त	उदय गुप्त
६१	६	महोदय	मोहोदय
६१	२०	वध भेद	बंध भेद
६७	३	इस तरह दिगम्बर	दिगम्बर इस तरह
६७	१२	नउ	न
६८	१३	दिलायी	दिलाया
६९	५	घारा	धारा
६९	१७	आकाशाम्बर	आशाम्बर
६९	२७	आकाशाम्बर	आशाम्बर
७१	१८	माहावरण	मोहावरण
७१	२५	निश्चिय	निश्चय
७३	६	ना	का
७३	१९	चंद्र प्रभु	चन्द्र प्रभ
७८	२५	विगयायाग	विगय त्याग
७९	२३	सोम प्रेम	सोमप्रभ
८०	३	विचार	विहार
८२	३	उच्जयनी	उज्जयनी
८४	१२	यतिगन	यतिगण

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८५	१३	की	वात
८६	२३	ओर	और
८७	८	लोंकाशाह	लोकाशाह की
८८	१६	पूरी पक्ति	—
९०	१	गण	गण से
९०	१	चरित्र	चारित्र
९२	२	कथन की	कथन को
९३	१९	माटी	मोटी
९५	२	हठमतवाला	हठवाला
९६	२७	ही	के
९७	१३	रहते	रहता
९७	१७	से	मे
९९	२२	था	—
१०१	६	से	के
१०१	६	सघ	संग
१०१	२५	जोधराजजी, मुनि मोती लालजी	मोतीलाल जी, जोधराजजी मुनि
१०२	४	सरना	सरल
१०५	५	एव	एवं
१०५	१९	वद्धमान	वर्द्धमान
१०७	२६	ता	तो
१०७	२६	लना	लेना
११३	२४	श्रवण सघ	श्रमण संघ
११६	८	आकाशावर	आगाम्वर
११८	२०	समह	समूह
११८	२१	आने	अपने
११८	२१	गुण न माने	गुणकर माने
१२०	१४	रतचन्द्र	रत्नचन्द्र
१२१	३	रत्नचन्द्रजी	पूज्य रत्नचन्द्रजी
१२१	४	पधर	पट्टधर
१२१	६	सौभायमलजी	सौभाग्यमल जी
१२२	६	वैययन्ती	वैजयन्ती
१४२	८	तासरे	तीसरे
१४३	२	धमाद्वारक	धर्मोद्वारक
१४५	२१	छगनलाल जी	सहममल जी